नमः सुगतये तुभ्यं शोभना गतिमीयुषे । नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञानसुखायानिन्द्रियात्मने ॥९०॥
कायबन्धननिर्मोक्षाद् अकायाय नमोऽस्तु ते । नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने ॥९१॥
अवेदाय नमस्तुभ्यम् अकषायाय ते नमः । नमः परमयोगीन्द्र वन्दिताङ्घ्रिद्वयाय ते ॥९२॥
नम. परमविज्ञान नम· परमसंयम । नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय तायिने[1] ॥९३॥
नमस्तुभ्यमलेश्याय[2] शुद्धलेश्यांशकस्पृशे । नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षिणे ॥९४॥
[3]सञ्ज्ञ्यसञ्ज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने । नमस्ते वीतसञ्ज्ञाय[4] नम· क्षायिकदृष्टये ॥९५॥
अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे । व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमायुषे[5] ॥९६॥
अजराय नमस्तुभ्य नमस्ते स्तादजन्मने । अमृत्यवे नमस्तुभ्यम् अचलायाक्षरात्मने[6] ॥९७॥
अलमास्ता गुणस्तोत्रम् अनन्तास्तावका गुणा. । त्वा नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे[7] ॥९८॥
प्रसिद्धाष्ट[8]सहस्रेद्धलक्षणं त्वा गिरा पतिम् । [9]नाम्नामष्टसहस्रेण [10]तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥९९॥

और आपके समस्त राग आदि दोष नष्ट हो गये है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥८९॥ आप मोक्ष रूपी उत्तम गतिको प्राप्त होनेवाले है इसलिये सुगति है अत आपको नमस्कार हो, आप अतीन्द्रियज्ञान और सुखसे सहित है तथा इन्द्रियोसे रहित अथवा इन्द्रियोके अगोचर है इसलिए आपको नमस्कार हो ॥९०॥ आप शरीररूपी बन्धनके नष्ट हो जानेसे अकाय कहलाते है इसलिये आपको नमस्कार हो, आप योगरहित है और योगियो अर्थात् मुनियोमे सबसे उत्कृष्ट है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥९१॥ आप वेदरहित है, कषायरहित है, और बडे बडे योगिराज भी आपके चरणयुगलकी वन्दना करते है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥९२॥ हे परमविज्ञान, अर्थात् उत्कृष्ट-केवलज्ञानको धारण करनेवाले, आपको नमस्कार हो, हे परम सयम, अर्थात् उत्कृष्ट-यथाख्यात चारित्रको धारण करनेवाले, आपको नमस्कार हो। हे भगवन्, आपने उत्कृष्ट केवल-दर्शनके द्वारा परमार्थको देख लिया है तथा आप सबकी रक्षा करनेवाले है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥९३॥ आप यद्यपि लेश्याओसे रहित है तथापि उपचारसे शुद्ध-शुक्ललेश्याके अशोका स्पर्श करनेवाले है, भव्य तथा अभव्य दोनो ही अवस्थाओसे रहित है और मोक्ष-रूप है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥९४॥ आप सज्ञी और असज्ञी दोनो अवस्थाओसे रहित निर्मल आत्माको धारण करनेवाले है, आपकी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चारो सज्ञाए नष्ट हो गई है तथा क्षायिक सम्यग्दर्शनको धारण कर रहे है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥९५॥ आप आहार रहित होकर भी सदा तृप्त रहते है, परम दीप्तिको प्राप्त है, आपके समस्त दोष नष्ट हो गये है और आप ससाररूपी समुद्रके पारको प्राप्त हुए है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥९६॥ आप बुढापारहित है, जन्मरहित है, मृत्युरहित है अचलरूप है और अविनाशी है इसलिये आपको नमस्कार हो ॥९७॥ हे भगवन्, आपके गुणोका स्तवन दूर रहे, क्योकि आपके अनन्त गुण है उन सबका स्तवन होना कठिन है इसलिये केवल आपके नामोका स्मरण करके ही हमलोग आपकी उपासना करना चाहते है ॥९८॥ आपके देदीप्यमान एक हजार आठ लक्षण अतिशय प्रसिद्ध है और आप समस्त वाणियोके स्वामी है इसलिये हम लोग अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये एक हजार आठ नामोसे आपकी स्तुति करते है ॥ ९९ ॥ आप अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरङ्गलक्ष्मी

---

१ पालकाय । २ शुक्ललेश्या मुक्त्वा इतरपञ्चलेश्यारहिताय । ३ सज्ञा सज्ञि– ल० । ४ विशेषेण प्राप्तसज्ज्ञानाय । ५ –मीयुषे –ल० । ६ अविनश्वरस्वरूपाय । ७ उपामन कर्तु-मिच्छाम । ८ अष्टोत्तरसहस्र । ९ अष्टोत्तरसहस्रेण । १० स्तुति कुर्म ।

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभः[2] शम्भवः[3] शम्भुरात्मभूः। स्वयंप्रभः[4] प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥१००॥
विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः। विश्वविद् विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः ॥१०१॥
विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः। विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥१०२॥

और अष्ट प्रातिहार्यरूप बहिरङ्ग लक्ष्मीसे सहित है इसलिये श्रीमान् १ कहलाते हैं, आप अपने आप उत्पन्न हुए हैं–किसी गुरुके उपदेशकी सहायताके बिना अपने आपही सवुद्ध हुए है इसलिये स्वयभू २ कहलाते है, आप वृष अर्थात् धर्मसे सुशोभित है इसलिये वृपभ ३ कहलाते है, आपके स्वय अनन्त सुखकी प्राप्ति हुई है तथा आपके द्वारा ससारके अन्य अनेक प्राणियोको सुख प्राप्त हुआ है इसलिये शभव ४ कहलाते है, आप परमानन्दरूप सुखके देनेवाले है इसलिये शभु ५ कहलाते है, आपने यह उत्कृष्ट अवस्था अपने ही द्वारा प्राप्त की है अथवा योगीश्वर अपनी आत्मामे ही आपका साक्षात्कार कर सकते है इसलिये आप आत्मभू ६ कहलाते है, आप अपने आपही प्रकाशमान होते है इसलिये स्वयप्रभ ७ है, आप समर्थ अथवा सबके स्वामी है इसलिये प्रभु ८ है, अनन्त-आत्मोत्थ सुखका अनुभव करनेवाले है इसलिये भोक्ता है ९, केवलज्ञानकी अपेक्षा सब जगह व्याप्त है अथवा ध्यानादिके द्वारा सब जगह प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होते है इसलिये विश्वभू १० है, अव आप पुन ससारमे आकर जन्म धारण नहीं करेगे इसलिये अपुनर्भव ११ है ॥१००॥ ससारके समस्त पदार्थ आपकी आत्मामे प्रतिबिम्बित हो रहे है इसलिये आप विश्वात्मा १२ कहलाते है, आप समस्त लोकके स्वामी है इसलिये विश्वलोकेश १३ कहलाते है, आपके ज्ञानदर्शनरूपी नेत्र ससारमे सभी ओर अप्रतिहत है इसलिये आप विश्वतश्चक्षु १४ कहलाते है, अविनाशी है इसलिये अक्षर १५ कहे जाते है, समस्त पदार्थोको जानते है इसलिये विश्वविद् १६ कहलाते है, समस्त विद्याओके स्वामी है इसलिये विश्वविद्येश १७ कहे जाते है, समस्त पदार्थोकी उत्पत्तिके कारण है अर्थात् उपदेश देनेवाले है इसलिये विश्वयोनि १८ कहलाते है, आपके स्वरूपका कभी नाश नही होता इसलिये अनश्वर १९ कहे जाते है ॥१०१॥ समस्त पदार्थोको देखनेवाले है इसलिये विश्वदृश्वा २० है, केवलज्ञानकी अपेक्षा सब जगह व्याप्त है अथवा सब जीवोको ससारसे पार करनेमे समर्थ है अथवा परमोत्कृष्ट विभूतिसे सहित है इसलिये विभु २१ है, ससारी जीवोका उद्धार कर उन्हे मोक्षस्थानमे धारण करनेवाले है–पहुँचानेवाले है अथवा सब जीवोका पोपण करनेवाले है अथवा मोक्षमार्गकी सृष्टि करनेवाले है इसलिये धाता २२ कहलाते है, समस्त जगत्के ईश्वर है इसलिये विश्वेश २३ कहलाते है, सब पदार्थोको देखनेवाले है अथवा सबके हित सन्मार्गका उपदेश देनेके कारण सब जीवोके नेत्रोके समान है इसलिये विश्वविलोचन २४ कहे जाते है, ससारके समस्त पदार्थोको जाननेके कारण आपका ज्ञान सब जगह व्याप्त है इसलिये आप विश्वव्यापी २५ कहलाते है। आप समीचीन मोक्षमार्गका विधान करनेसे विधि २६ कहलाते है। धर्मरूप जगत्की सृष्टि करनेवाले है इसलिये वेधा २७ कहलाते है, सदा विद्यमान रहते है इसलिये शाश्वत २८ कहे जाते है, समवसरण सभामे आपके मुख चारो दिशाओमे दिखते है अथवा आप विश्वतोमुख अर्थात् जलकी तरह पापरूपी पकको

१ स्वयमात्मना भवतीति। २ वृषेण धर्मेण भवतीति। ३ श सुखे भवतीति। ४ स्वयप्रकाश। ५ कारणम्।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वर. । विश्वदृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥१०३॥
जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्व[1]रीशो जगत्पतिः । [2]अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः ॥१०४॥
युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्च[3]ब्रह्ममयः शिव. । पर. परतर सूक्ष्म. परमेष्ठी सनातन ॥१०५॥
स्वय ज्योतिरजोऽजन्मा [4]ब्रह्मयोनिरयोनिजः । [5]मोहारिविजयी जेता[6] धर्मचक्री दयाध्वज. ॥१०६॥

दूर करनेवाले, स्वच्छ तथा तृष्णाको नष्ट करनेवाले है इसलिये विश्वतोमुख २९ कहे जाते है ॥१०२॥ आपने कर्मभूमिकी व्यवस्था करते समय लोगोकी आजीविकाके लिये असि-मषी आदि सभी कर्मो-कार्योका उपदेश दिया था इसलिये आप विश्वकर्मा ३० कहलाते है, आप जगत्मे सबसे ज्येष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ है इसलिये जगज्ज्येष्ठ ३१ कहे जाते है, आप अनन्त गुणमय है अथवा समस्त पदार्थोके आकार आपके ज्ञानमे प्रतिफलित हो रहे है इसलिये आप विश्वमूर्ति ३२ है, कर्मरूप शत्रुओको जीतनेवाले सम्यग्दृष्टि आदि जीवोके आप ईश्वर है इसलिये जिनेश्वर ३३ कहलाते है, आप ससारके समस्त पदार्थोका सामान्यावलोकन करते है इसलिये विश्वदृक् ३४ कहलाते है, समस्त प्राणियोके ईश्वर है इसलिये विश्वभूतेश ३५ कहे जाते है, आपकी केवलज्ञानरूपी ज्योति अखिल ससारमे व्याप्त है इसलिये आप विश्वज्योति ३६ कहलाते है, आप सबके स्वामी है किन्तु आपका कोई भी स्वामी नही है इसलिये आप अनीश्वर ३७ कहे जाते है ॥१०३॥ आपने घातिया-कर्मरूपी शत्रुओंको जीत लिया है इससे आप जिन ३८ कहलाते है, कर्मरूपी शत्रुओको जीतना ही आपका शील अर्थात् स्वभाव है इसलिये आप जिष्णु ३९ कहे जाते है, आपकी आत्माको अर्थात् आपके अनन्त गुणोको कोई नही जान सका है इसलिये आप अमेयात्मा ४० है, पृथिवीके ईश्वर है इसलिये विश्वरीश ४१ कहलाते है, तीनों लोकोके स्वामी हं इसलिये जगत्पति ४२ कहे जाते है, अनन्त ससार अथवा मिथ्यादर्शनको जीत लेनेके कारण आप अनन्तजित् ४३ कहलाते है, आपकी आत्माका चिन्तवन मनसे भी नही किया जा सकता इसलिये आप अचिन्त्यात्मा ४४ है, भव्य जीवोके हितैषी है इसलिये भव्यबन्धु ४५ कहलाते है, कर्मबन्धनसे रहित होनेके कारण अबन्धन ४६ कहलाते है ॥१०४॥ आप इस कर्मभूमिरूपी युगके प्रारम्भमे उत्पन्न हुए थे इसलिये युगादिपुरुष ४७ कहलाते है, केवलज्ञान आदि गुण आपमे बृहण अर्थात् वृद्धिको प्राप्त हो रहे है इसलिये आप ब्रह्मा ४८ कहे जाते है, आप पच परमेष्ठीस्वरूप है, इसलिये पच ब्रह्ममय ४९ कहलाते है, शिव अर्थात् मोक्ष अथवा आनन्दरूप होनेसे शिव ५० कहे जाते है, आप सब जीवोका पालन अथवा समस्तज्ञान आदि गुणोको पूर्ण करनेवाले है इसलिये पर ५१ कहलाते है, ससारमे सबसे श्रेष्ठ है इसलिये परतर ५२ कहलाते है, इन्द्रियोके द्वारा आपका आकार नही जाना जा सकता अथवा नामकर्मका क्षय हो जानेसे आपमे बहुत शीघ्र सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होनेवाला है इसलिये आपको सूक्ष्म ५३ कहते है, परमपदमे स्थित है इसलिये परमेष्ठी ५४ कहलाते है और सदा एकसे ही विद्यमान रहते है इसलिये सनातन ५५ कहे जाते है ॥१०५॥ आप स्वय प्रकाशमान है इसलिये स्वयज्योति ५६ कहलाते है, ससारमे उत्पन्न नही होते इसलिये अज ५७ कहे जाते है जन्म रहित है इसलिये अजन्मा ५८ कहलाते है, आप ब्रह्म अर्थात् वेद (द्वादशाग शास्त्र) की उत्पत्तिके कारण है इसलिये ब्रह्मयोनि ५९ कहलाते है,

१ विश्वरि मही तस्या ईश । २ ससारजित् । ३ पञ्चपरमेष्ठिस्वरूप । ४ आत्मयोनि । ५ मोहारिविजयी –द० । ६ जयशील ।

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चित । ब्रह्मविद् ब्रह्म[1]तत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्या[2]विद्यतीश्वरः ॥१०७॥
शुद्धो बुद्ध प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थ. सिद्धशासन । [3]सिद्ध.सिद्धान्तविद्ध्येय. सिद्धसाध्यो जगद्धित. ॥१०८॥
सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः [4]प्रभविष्णुर्भवोद्भव.[5] । [6]प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो[7] भ्राजिष्णु[8]र्धीश्वरोऽव्ययः ॥१०९॥

चौरासी लाख योनियोमे उत्पन्न नही होते इसलिये अयोनिज ६० कहे जाते है, मोहरूपी शत्रुको जीतने वाले है इससे मोहारिविजयी ६१ कहलाते है, सर्वदा सर्वोत्कृष्ट रूपसे विद्यमान रहते है इसलिये जेता ६२ कहे जाते है, आप धर्मचक्रको प्रवर्तित करते है इसलिये धर्मचक्री ६३ कहलाते है, दया ही आपकी ध्वजा है इसलिये आप दयाध्वज ६४ कहे जाते है ॥१०६॥ आपके समस्त कर्मरूप शत्रु शान्त हो गये है इसलिये आप प्रशान्तारि ६५ कहलाते है, आपकी आत्माका अन्त कोई नही पा सका है इसलिये आप अनन्तात्मा ६६ है, आप योग अर्थात् केवलज्ञान आदि अपूर्व अर्थोकी प्राप्तिसे सहित है अथवा ध्यानमे युक्त है अथवा मोक्षप्राप्तिके उपाय भूत सम्यग्दर्शनादि उपायोसे सुशोभित है इसलिये योगी ६७ कहलाते है, योगियो अर्थात् मुनियोके अधीश्वर आपकी पूजा करते है इसलिये योगीश्वरार्चित ६८ है, ब्रह्म अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूपको जानते है इसलिये ब्रह्मविद् ६९ कहलाते है, ब्रह्मचर्य अथवा आत्मारूपी तत्त्वके रहस्यको जाननेवाले है इसलिये ब्रह्मतत्त्वज्ञ ७० कहे जाते है, पूर्व ब्रह्माके द्वारा कहे हुए समस्त तत्त्व अथवा केवलज्ञानरूपी आत्मविद्याको जानते है इसलिये ब्रह्मोद्यावित् ७१ कहे जाते है, मोक्ष प्राप्त करनेके लिये यत्न करनेवाले सयमी मुनियोके स्वामी है इसलिये यतीश्वर ७२ कहलाते है ॥१०७॥ आप रागद्वेषादि भाव कर्ममल कलक से रहित होनेके कारण शुद्ध ७३ है, ससारके समस्त पदार्थोको जाननेवाली केवलज्ञानरूपी बुद्धिसे सयुक्त होने कारण बुद्ध ७४ कहलाते है, आपकी आत्मा सदा शुद्ध ज्ञानसे जगमगाती रहती है इसलिये आप प्रबुद्धात्मा ७५ है, आपके सब प्रयोजन सिद्ध हो चुके है इसलिये आप सिद्धार्थ ७६ कहलाते है, आपका शासन सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध हो चुका है इसलिये आप सिद्धशासन ७७ है, आप अपने अनन्तगुणोको प्राप्त कर चुके है अथवा बहुत शीघ्र मोक्ष अवस्था प्राप्त करने वाले है इसलिये सिद्ध ७८ कहलाते है, आप द्वादशाङ्गरूप सिद्धान्तको जाननेवाले है इसलिये सिद्धान्तविद् ७९ कहे जाते है, सभी लोग आपका ध्यान करते है इसलिये आप ध्येय ८० कहलाते है, आपके समस्त साध्य अर्थात् करने योग्य कार्य सिद्ध हो चुके है इसलिये आप सिद्धसाध्य ८१ कहलाते है, आप जगत्के समस्त जीवोका हित करनेवाले है इससे जगद्धित ८२ कहे जाते है ॥१०८॥ सहनशील है अर्थात् क्षमा गुणके भण्डार है इसलिये सहिष्णु ८३ कहलाते है, ज्ञानादि गुणोसे कभी च्युत नही होते इसलिये अच्युत ८४ कहे जाते है, विनाश रहित है, इसलिये अनन्त ८५ कहलाते है, प्रभावशील है इसलिये प्रभविष्णु ८६ कहे जाते है, ससारमे आपका जन्म सबसे उत्कृष्ट माना गया है इसलिये आप भवोद्भव ८७ कहलाते है, आप शक्तिशाली है इसलिये प्रभूष्णु ८८ कहे जाते है, वृद्धावस्थासे रहित होनेके कारण अजर ८९ है, आप कभी जीर्ण नही होते इसलिये अजर्य ९० है, ज्ञानादि गुणोसे अतिशय देदीप्यमान हो रहे है इसलिये भ्राजिष्णु ९१ है, केवलज्ञानरूपी बुद्धिके ईश्वर है इसलिये धीश्वर ९२ कहलाते

---

१ मोक्षस्वरूपवित्। २ ब्रह्मणा वेदितव्यमावेत्तीति। अथवा ब्रह्मणो वदन वचनम्। ३ सिद्ध-सिद्धान्त - ब०, प०, द०। ४ प्रकर्षेण भवनशील। ५ भवात् ससारात् उत् उद्गतो भव उत्पत्तिर्यस्य स। अथवा अनन्तज्ञानादिभवनरूपेण भवतीति। ६ प्रभवतीति। ७ न जीर्यत इति। ८ प्रकाशनशील.।

विभावसु[१]रसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः। परमात्मा परं ज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥११०॥

इति श्रीमदादिशतम्।

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः। पूतात्मा परमज्योतिः धर्माध्यक्षो दमीश्वर.[२] ॥१११॥

श्रीपतिर्भग[३]वानर्हन्नरजाः विरजाः शुचि। तीर्थकृत् केवलीशानः पूजार्ह. [४]स्नातकोऽमल. ॥११२॥

अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयम्बुद्धः प्रजापतिः। मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥११३॥

है, कभी आपका व्यय अर्थात् नाश नही होता इसलिये आप अव्यय ९३ कहलाते है ॥१०९॥ आप कर्मरूपी ईधनको जलानेके लिये अग्निके समान है अथवा मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिये सूर्यके समान है, इसलिये विभावसु ९४ कहलाते है, आप ससारमे पुन उत्पन्न नही होगे इसलिये असभूष्णु ९५ कहे जाते हे, आप अपने आप ही इस अवस्थाको प्राप्त हुए है इसलिये स्वयभूष्णु ९६ है, प्राचीन है—द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अनादिसिद्ध है इसलिये पुरातन ९७ कहलाते है, आपकी आत्मा अतिशय उत्कृष्ट है इसलिये आप परमात्मा ९८ कहे जाते है, उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप है इसलिये परज्योति ९९ कहलाते है, तीनो लोकोके ईश्वर है, इसलिए त्रिजगतपरमेश्वर १०० कहे जाते है ॥११०॥

आप दिव्य-ध्वनिके पति है इसलिये आपको दिव्यभाषापति १०१ कहते है, अत्यन्त सुन्दर है इसलिये आप दिव्य १०२ कहलाते है, आपके वचन अतिशय पवित्र है इसलिये आप पूतवाक् १०३ कहे जाते है, आपका शासन पवित्र होनेसे आप पूतशासन १०४ कहलाते है, आपकी आत्मा पवित्र है इसलिये आप पूतात्मा १०५ कहे जाते है, उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप है इसलिये परमज्योति १०६ कहलाते है, धर्मके अध्यक्ष है इसलिये धर्माध्यक्ष १०७ कहे जाते हैं, इन्द्रियोको जीतनेवालोमे श्रेष्ठ है इसलिये दमीश्वर १०८ कहलाते है॥१११॥मोक्षरूपी लक्ष्मीके अधिपति है इसलिये श्रीपति १०९ कहलाते है, अष्टप्रातिहार्यरूप उत्तम ऐश्वर्यसे सहित हैं इसलिये भगवान् ११० कहे जाते हैं, सबके द्वारा पूज्य हैं इसलिये अर्हन् १११ कहलाते है, कर्मरूपी धूलिसे रहित है इसलिये अरजा ११२ कहे जाते है, आपके द्वारा भव्य जीवोके कर्ममल दूर होते है अथवा आप ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मसे रहित है इसलिये विरजा ११३ कहलाते है, अतिशय पवित्र हैं इसलिये शुचि ११४ कहे जाते है, धर्मरूप तीर्थके करनेवाले है इसलिये तीर्थकृत् ११५ कहलाते है, केवलज्ञानसे सहित होनेके कारण केवली ११६ कहे जाते है, अनन्त सामर्थ्यसे युक्त होनेके कारण ईशान ११७ कहलाते है, पूजाके योग्य होनेसे पूजार्ह ११८ हैं, घातिया कर्मोके नष्ट होने अथवा पूर्णज्ञान होनेसे आप स्नातक ११९ कहलाते है, आपका शरीर मल रहित है अथवा आत्मा राग द्वेष आदि दोषोसे वर्जित है इसलिये आप अमल १२० कहे जाते है ॥११२॥ आप केवलज्ञानरूपी अनन्त दीप्ति अथवा शरीरकी अपरिमित प्रभाके धारक है इसलिये अनन्तदीप्ति १२१ कहलाते हैं, आपकी आत्मा ज्ञानस्वरूप है इसलिये आप ज्ञानात्मा १२२ है, आप स्वय ससारसे विरक्त होकर मोक्षमार्गमे प्रवृत्त हुए है अथवा आपने गुरुओकी सहायताके विना ही समस्त पदार्थोका ज्ञान प्राप्त किया है इसलिये स्वयवुद्ध १२३ कहलाते है, समस्त जनसमूहके रक्षक होनेसे आप प्रजापति १२४ है, कर्मरूप वन्धनसे रहित है इसलिये मुक्त १२५ कहलाते है, अनन्तवलसे सम्पन्न होनेके कारण शक्त १२६ कहे जाते

---

१ विभा प्रभा अस्मिन् वसतीति। दहन इति वा। २ महेश्वर –द०, प०। ३ विशिष्टज्ञानी। ४ समाप्तवेद, सम्पूर्णज्ञानीत्यर्थ।

निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरु[1]क्तोक्तिर[2]नामयः । अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः[3] [4]स्थाणुरक्षयः ॥११४॥
अग्रणीर्ग्रा[5]मणीर्नेता प्रणेता [6]न्यायशास्त्रकृत् । शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥११५॥
वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः । [7]वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥११६॥
हिरण्यनाभिर्भूतात्मा[8] भूतभृद् भूतभावनः[10] । प्रभवो विभवो भास्वान् भवो[11] भावो[12] भवान्तकः ॥११७॥

हैं, बाधा-उपसर्ग आदिसे रहित है इसलिये निराबाध १२७ कहलाते है, शरीर अथवा मायासे रहित होनेके कारण निष्कल १२८ कहे जाते है और तीनो लोकोके ईश्वर होनेसे भुवनेश्वर १२९ कहलाते है ॥११३॥ आप कर्मरूपी अजनसे रहित है इसलिये निरञ्जन १३० कहलाते है, जगत्को प्रकाशित करनेवाले है इसलिये जगज्ज्योति १३१ कहे जाते है, आपके वचन सार्थक है अथवा पूर्वापर विरोधसे रहित है इसलिये आप निरुक्तोक्ति १३२ कहलाते हैं, रोग रहित होनेसे अनामय १३३ है, आपकी स्थिति अचल है इसलिये अचल-स्थिति १३४ कहलाते है, आप कभी क्षोभको प्राप्त नही होते इसलिये अक्षोभ्य १३५ है, नित्य होनेसे कूटस्थ १३६ है, गमनागमनसे रहित होनेके कारण स्थाणु १३७ है और क्षय रहित होनेके कारण अक्षय १३८ है ॥११४॥ आप तीनो लोकोमे सबसे श्रेष्ठ हैं इसलिये अग्रणी १३९ कहलाते है, भव्यजीवोके समूहको मोक्ष प्राप्त करानेवाले है इसलिये ग्रामणी १४० हैं, सब जीवोको हितके मार्गमे प्राप्त कराते है इसलिये नेता १४१ है, द्वादशांगरूप शास्त्रकी रचना करनेवाले हैं इसलिये प्रणेता १४२ है, न्यायशास्त्रका उपदेश देनेवाले है इसलिये न्यायशास्त्रकृत् १४३ कहे जाते है, हितका उपदेश देनेके कारण शास्ता १४४ कहलाते है, उत्तम क्षमा आदि धर्मोके स्वामी है इसलिये धर्मपति १४५ कहे जाते हैं, धर्मसे सहित हैं इसलिये धर्म्य १४६ कहलाते है, आपकी आतमा धर्मरूप अथवा धर्मसे उपलक्षित है इसलिये आप धर्मात्मा १४७ कहलाते है और आप धर्मरूपी तीर्थके करनेवाले हैं इसलिये धर्मतीर्थकृत् १४८ कहे जाते है ॥११५॥ आपकी ध्वजामे वृष अर्थात् बैलका चिह्न है अथवा धर्म ही आपकी ध्वजा है अथवा आप वृषभ चिह्नसे अकित है इसलिये वृषध्वज १४९ कहलाते है आप वृष अर्थात् धर्मके पति है इसलिये वृषाधीश १५० कहे जाते हैं, आप धर्मकी पताका स्वरूप है इसलिये लोग आपको वृषकेतु १५१ कहते है, आपने कर्मरूप शत्रुओको नष्ट करनेके लिये धर्मरूप शस्त्र धारण किये है इसलिये आप वृषायुध १५२ कहे जाते है, आप धर्मरूप है इसलिये वृष १५३ कहलाते है, धर्मके स्वामी है इसलिये वृषपति १५४ कहे जाते है, समस्त जीवोका भरण-पोषण करते है इसलिये भर्ता १५५ कहलाते है, वृषभ अर्थात् बैलके चिह्नसे सहित है इसलिये वृषभाङ्क १५६ कहे जाते है और पूर्व पर्यायोमे उत्तम धर्म करनेसे ही आप तीर्थ कर होकर उत्पन्न हुए है इसलिये आप वृषोद्भव १५७ कहलाते है ॥११६॥ सुन्दर नाभि होनेसे आप हिरण्यनाभि १५८ कहलाते है, आपकी आत्मा सत्यरूप है इसलिये आप भूतात्मा १५९ कहे जाते है, आप समस्त जीवोकी रक्षा करते है इसलिये पण्डितजन आपको भूतभृत् १६० कहते है, आपकी भावनाए बहुत ही उत्तम है, इसलिये आप भूतभावन १६१ कहलाते है, आप मोक्षप्राप्तिके कारण है अथवा आपका जन्म

१ प्रामाणिकवचन । २ –निरामय. –प०, ब० । ३ नित्य । ४ स्थानशील । ५ ग्रामं समुदाय नयतीति । ६ युक्त्यागम । ७ धर्मवर्षणात् । ८ विद्यमानस्वरूप । ९ प्राणिगणपोषक । १० भून मद्गल भावयतीति । ११ भवतीति । १२ भावयतीति भाव ।

हिरण्यगर्भः[1] श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः । स्वयप्रभः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्पति. ॥११८॥
सर्वादि. सर्वदिक् सार्व. सर्वज्ञ· सर्वदर्शनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित् सर्वलोकजित् ॥११९॥
सुगति. सुश्रुतः[2]सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुत. । विश्रुतो विश्वत. पादो[3] विश्वशीर्षः शुचिश्रवा.[4] ॥१२०॥

प्रशसनीय है इसलिये प्रभव १६२ कहे जाते है, ससारसे रहित होनेके कारण आप विभव १६३ कहलाते है, देदीप्यमान होनेसे भास्वान् १६४ है उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्यरूपसे सदा उत्पन्न होते रहते है इसलिये भव १६५ कहलाते है अपने चैतन्यरूप भावमे लीन रहते हैं इसलिये भाव १६६ कहे जाते है और ससारभ्रमणका अन्त करनेवाले है इसलिये भवातक १६७ कहलाते है ॥११७॥ जब आप गर्भमे थे तभी पृथिवी सुवर्णमय हो गई थी और आकाशसे देवने भी सुवर्णकी वृष्टि की थी इसलिये आप हिरण्यगर्भ १६८ कहे जाते है, आपके अन्तरङ्गमे अनन्तचतुष्टयरूपी लक्ष्मी देदीप्यमान हो रही है इसलिये आप श्रीगर्भ १६९ कहलाते है, आपका विभव बडा भारी है इसलिये आप प्रभूतविभव १७० कहे जाते है, जन्म रहित होनेके कारण अभव १७१ कहलाते है, स्वय समर्थ होनेसे स्वयप्रभु १७२ कहे जाते है, केवलज्ञानकी अपेक्षा आपकी आत्मा सर्वत्र व्याप्त है इसलिये आप प्रभूतात्मा १७३ है, समस्त जीवोके स्वामी होनेसे भूतनाथ १७४ है, और तीनो लोकोके स्वामी होनेसे जगतप्रभु १७५ है ॥११८॥ सबसे मुख्य होनेके कारण सर्वादि १७६ है, सर्व पदार्थोके देखनेके कारण सर्वदृक् १७७ है, सबका हित करनेवाले है, इसलिये सार्व १७८ कहलाते है, सब पदार्थोको जानते है, इसलिये सर्वज्ञ १७९ कहे जाते है, आपका दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व अथवा केवलदर्शन पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुआ है इसलिये आप सर्वदर्शन १८० कहलाते है, आप सबका भला चाहते है—सबको अपने समान समझते है अथवा ससारके समस्त पदार्थ आपके आत्मामें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं इसलिये आप सर्वात्मा १८१ कहे जाते है, सब लोकोके स्वामी है, इसलिये सर्वलोकेश १८२ कहलाते है, सब पदार्थोको जानते है, इसलिये सर्वविद् १८३ है, और समस्त लोकोको जीतनेवाले है—सबसे बढकर है, इसलिये सर्वलोकजित् १८४ कहलाते है ॥११९॥ आपकी मोक्षरूपी गति अतिशय सुन्दर है अथवा आपका ज्ञान बहुत ही उत्तम है इसलिये आप सुगति १८५ कहलाते है, अतिशय प्रसिद्ध है अथवा उत्तम शास्त्रोको धारण करनेवाले है इसलिये सुश्रुत १८६ कहे जाते है, सब जीवोकी प्रार्थनाए सुनते हैं इसलिये सुश्रुत् १८७ कहलाते है, आपके वचन बहुत ही उत्तम निकलते हैं इसलिये आप सुवाक् १८८ कहलाते है, सबके गुरु है अथवा समस्त विद्याओको प्राप्त है इसलिये सूरि १८९ कहे जाते है, बहुत शास्त्रोके पारगामी होनेसे बहुश्रुत १९० है, बहुत प्रसिद्ध है अथवा केवलज्ञान होनेके कारण आपका क्षायोपशमिक श्रुतज्ञान नष्ट हो गया है इसलिये आप विश्रुत १९१ कहलाते है, आपका सचार प्रत्येक विषयोमे होता है अथवा आपकी केवलज्ञानरूपी किरणे ससारमे सभी ओर फैली हुई हैं इसलिये आप विश्वत पाद १९२ कहलाते है, लोकके शिखरपर विराजमान है इसलिये विश्वशीर्ष १९३ कहे जाते है, और आपकी श्रवणशक्ति अत्यन्त पवित्र है इसलिये शुचिश्रवा १९४ कहलाते है ॥१२०॥

---

१ हिरण्य गर्भे यस्य स । २ सुष्ठु शृणोतीति । ३ किरण । ४ शुचि श्रवो ज्ञान श्रवण च यस्य स ।

सहस्र[1]शीर्षः क्षेत्रज्ञः[2] सहस्राक्षः[3] सहस्रपात्[4]। भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥१२१॥
इति दिव्यादिशतम्।

स्थविष्ठः[5] स्थविरो[6] ज्येष्ठः प्रष्ठः[7] प्रेष्ठो[8] वरिष्ठधीः[9]। स्थेष्ठो[10] गरिष्ठो[11] बंहिष्ठः[12] श्रेष्ठोऽणिष्ठो[13] गरिष्ठगीः
[14]विश्वमुड्विश्वसृड् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः। विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ॥१२३॥
विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन्[15]। विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥१२४॥

अनन्त सुखी होनेसे सहस्रशीर्ष १९५ कहलाते है, क्षेत्र अर्थात् आत्माको जाननेसे क्षेत्रज्ञ १९६ कहलाते है, अनन्त पदार्थोंको जानते है इसलिये सहस्राक्ष १९७ कहे जाते हैं अनन्त बलके धारक है इसलिये सहस्रपात् १९८ कहलाते है, भूत भविष्यन् और वर्तमान कालके स्वामी है इसलिये भूतभव्यभवद्भर्ता १९९ कहे जाते है, समस्त विद्याओंके प्रधान स्वामी है इसलिये विश्वविद्यामहेश्वर २०० कहलाते है ॥१२१॥ इति दिव्यादि शतम्।

आप समीचीन गुणोकी अपेक्षा अतिशय स्थूल है इसलिये स्थविष्ठ २०१ कहे जाते है, ज्ञानादि गुणोके द्वारा वृद्ध है इसलिये स्थविर २०२ कहलाते है, तीनो लोकोमे अतिशय प्रशस्त होनेके कारण ज्येष्ठ २०३ है, सबके अग्रगामी होनेके कारण प्रष्ठ २०४ कहलाते है, सबको अतिशय प्रिय है इसलिये प्रेष्ठ २०५ कहे जाते हैं आपकी बुद्धि अतिशय श्रेष्ठ है इसलिये वरिष्ठधी २०६ कहलाते है, अत्यन्त स्थिर अर्थात् नित्य है इसलिये स्थेष्ठ २०७ कहलाते है, अत्यन्त गुरु है इसलिये गरिष्ठ २०८ कहे जाते हैं, गुणोकी अपेक्षा अनेक रूप धारण करने से बंहिष्ठ २०९ कहलाते है अतिशय प्रशस्त है इसलिये श्रेष्ठ २१० है, अतिशय सूक्ष्म होनेके कारण अणिष्ठ २११ कहे जाते है और आपकी वाणी अतिशय गौरवसे पूर्ण है इसलिये आप गरिष्ठगी २१२ कहलाते है ॥१२२॥ चतुर्गतिरूप ससारको नष्ट करनेके कारण आप विश्वमुट् २१३ कहे जाते है, समस्त ससारकी व्यवस्था करनेवाले है इसलिये विश्वसृट् २१४ कहलाते है, सब लोकके ईश्वर है इसलिये विश्वेट् २१५ कहे जाते है समस्त ससारकी रक्षा करनेवाले है इसलिये विश्वभुक् २१६ कहलाते है, अखिल लोकके स्वामी है इसलिये विश्वनायक २१७ कहे जाते है, समस्त ससारमे व्याप्त होकर रहते है इसलिये विश्वासी २१८ कहलाते है, विश्वरूप अर्थात् केवलज्ञान ही आपका स्वरूप है अथवा आपका आत्मा अनेकरूप है इसलिये आप विश्वरूपात्मा २१९ कहे जाते है, सबको जीतनेवाले है इसलिये विश्वजित् २२० कहे जाते है और अन्तक अर्थात् मृत्युको जीतनेवाले है इसलिये विजितान्तक २२१ कहलाते है ॥१२३॥ आपका ससार-भ्रमण नष्ट हो गया है इसलिये विभव २२२ कहलाते है, भय दूर हो गया है इसलिये विभय २२३ कहे जाते है, अनन्त बलशाली है इसलिये वीर २२४ कहलाते हैं, शोक रहित हैं इसलिये विशोक २२५ कहे जाते है, जरा अर्थात् बुढापासे रहित है इसलिये विजर २२६ कहलाते है, जगत्के सब जीवोमे प्राचीन हैं इसलिये जरन् २२७ कहे जाते है, राग रहित है इसलिये विराग २२८ कहलाते है, समस्त

---

१ अनन्तसुखी। २ आत्मज्ञ। ३ अनन्तदर्शी। ४ अनन्तवीर्य। ५ अतिशयेन स्थूलः। ६ वृद्ध। ७ अग्रगामी। ८ अतिशयेन प्रिय। ९ अतिशयेन वरबुद्धिः। १० अतिशयेन स्थिर। ११ अतिशयेन गुरु। १२ अतिशयेन बहु। १३ अतिशयेनाणुः सूक्ष्म इत्यर्थः। १४ विश्वपालक। विश्वमुट्–ल०। १५ वृद्ध।

विनेयजनताबन्धुर्विलीनाशेषकल्मषः । वियोगो योगविद्विद्वान् विधाता सुविधिः सुधी. ॥१२५॥
[1]क्षान्तिभाक् पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः । वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधक् ॥१२६॥
सुयज्वा[2] यजमानात्मा सुत्वा[3] सुत्रामपूजितः । [4]ऋत्विग् यज्ञपतिर्याज्यो यज्ञाङ्गममृत हवि· ॥१२७॥
व्योममूर्तिरमूर्तात्मा[5] निर्लेपो निर्मलोऽचलः । सोममूर्ति. सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥१२८॥

पापोसे विरत हो चुके है इसलिये विरत २२९ कहे जाते है, परिग्रह रहित है इसलिये असग २३० कहलाते हैं, एकाकी अथवा पवित्र होनेसे विविक्त २३१ है और मात्सर्यसे रहित होनेके कारण वीतमत्सर २३२ है ॥१२४॥ आप अपने शिष्य जनोके हितैपी है इसलिये विनेयजनताबन्धु २३३ कहलाते है आपके समस्त पापकर्म विलीन–नष्ट हो गये है इसलिये विलीनाशेषकल्मष २३४ कहे जाते है, आप योग अर्थात् मन वचन कायके निमित्तसे होनेवाले आत्मप्रदेशपरिस्पन्दसे रहित है इसलिये वियोग २३५ कहलाते है, योग अर्थात् ध्यानके स्वरूपको जाननेवाले है इसलिये योगविद् २३६ कहे जाते है, समस्त पदार्थोको जानते है इसलिये विद्वान् २३७ कहलाते है, धर्मरूप सष्टिके कर्ता होनेसे विधाता २३८ कहे जाते है, आपका कार्य बहुत ही उत्तम है इसलिए सुविधि २३९ कहलाते है और आपकी बुद्धि उत्तम है इसलिये सुधी २४० कहे जाते है ॥१२५॥ उत्तम क्षमाको धारण करनेवाले है इसलिये क्षान्तिभाक् २४१ कहलाते है, पृथिवीके समान सहनशील हैं इसलिये पृथ्वीमूर्ति २४२ कहे जाते है, शान्तिके उपासक है इसलिये शान्तिभाक् २४३ कहलाते है, जलके समान शीतलता उत्पन्न करनेवाले है इसलिये सलिलात्मक २४४ कहे जाते है, वायुके समान परपदार्थके ससर्गसे रहित होनेके कारण वायुमूर्ति २४५ कहलाते है, परिग्रह रहित होनेके कारण असगात्मा २४६ कहे जाते है, अग्निके समान कर्मरूपी ईधनको जलानेवाले है इसलिये वह्निमूर्ति २४७ है, और अधर्मको जलानेवाले है इसलिये अधर्मधक् २४८ कहलाते है ॥१२६॥ कर्मरूपी सामग्रीका अच्छी तरह होम करनेसे सुयज्वा २४९ है, निज स्वभावका आराधन करनेसे यजमानात्म २५० है, आत्मसुखरूप सागरमे अभिषेक करनेसे सुत्वा २५१ है, इन्द्रके द्वारा पूजित होनेके कारण सुत्रामपूजित २५२ है, ज्ञानरूपी यज्ञ करनेमे आचार्य कहलाते है इसलिये ऋत्विक् २५३ है, यज्ञके प्रधान अधिकारी होनेसे यज्ञपति २५४ कहलाते है। स्वय यज्ञस्वरूप है इसलिये यज्ञ २५५ कहलाते है, यज्ञके अग होनेसे यज्ञाग २५६ कहलाते है, विषयतृष्णाको नष्ट करनेके कारण अमृत २५७ कहे जाते है, और आपने ज्ञानयज्ञमे अपनी ही अशुद्ध परिणतिको होम दिया है इसलिये आप हवि २५८ कहलाते है ॥१२७॥ आप आकाशके समान निर्मल अथवा केवलज्ञानकी अपेक्षा लोक-अलोकमे व्याप्त है इसलिये व्योममूर्ति २५९ है, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे रहित होनेके कारण अमूर्तात्मा २६० है, कर्मरूप लेपसे रहित है इसलिये निर्लेप २६१ है, मलरहित है इसलिये निर्मल २६२ कहलाते है, सदा एक रूपसे विद्यमान रहते है इसलिये अचल २६३ कहे जाते है, चन्द्रमाके समान शान्त, सुन्दर अथवा प्रकाशमान रहते है इसलिये सोममूर्ति २६४ कहलाते है, आपकी आत्मा अतिशय सौम्य है इसलिये सुसौम्यात्मा २६५ कहे जाते है, सूर्यके समान तेजस्वी है इसलिये सूर्यमूर्ति २६६ कहलाते है और अतिशय प्रभाके धारक है इसलिये

१ क्षमाभाक् तत हेतुगर्भितमिदम्। एवमुत्तरत्रापि योज्यम्। २ शोभनयष्टा। ३ सुनोतीति सुत्वा, षुञ् अभिषवणे। कृताभिषेक इत्यर्थ। ४ पूजक। ५ अमूर्तात्मत्वात्।

मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तग.[1] । स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्[2] स्वन्त.[3] कृतान्तान्तः[4] कृतान्तकृत्[5] ॥१२९॥
कृती कृतार्थ सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः । नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भव.[6] ॥१३०॥
ब्रह्मनिष्ठः[7] परब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसंभवः । महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेड्[8] महाब्रह्मपदेश्वरः ॥१३१॥
सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः । प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥१३२॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ।

महाप्रभ २६७ कहलाते हैं ॥१२८॥ मन्त्रके जाननेवाले हैं इसलिये मत्रवित् २६८ कहे जाते है, अनेक मत्रोके करनेवाले है इसलिये मन्त्रकृत् २६९ कहलाते है, मत्रोसे युक्त है इसलिये मत्री २७० कहलाते है, मन्त्ररूप है इसलिये मत्रमूर्ति २७१ कहे जाते है, अनन्त पदार्थोको जानते है इसलिये अनन्तग २७२ कहलाते है, कर्मबन्धनसे रहित होनेके कारण स्वतन्त्र २७३ कहलाते है, शास्त्रोके करनेवाले है इसलिये तन्त्रकृत् २७४ कहे जाते है, आपका अन्त करण उत्तम है इसलिये स्वन्त २७५ कहलाते है, आपने कृतान्त अर्थात् यमराज-मृत्युका अन्त कर दिया है इसलिये लोग आपको कृतान्तान्त २७६ कहते है और आप कृतान्त अर्थात् आगमकी रचना करनेवाले है इसलिये कृतान्त कृत् २७७ कहे जाते है ॥१२९॥ आप अत्यन्त कुशल अथवा पुण्यवान् है इसलिये कृती २७८ कहलाते है, आपने आत्माके सब पुरुषार्थ सिद्ध कर चुके है इसलिये कृतार्थ २७९ है, ससारके समस्त जीवोके द्वारा सत्कार करनेके योग्य है इसलिये सत्कृत्य २८० हैं, समस्त कार्य कर चुके है इसलिये कृतकृत्य २८१ हैं, आप ज्ञान अथवा तपश्चरणरूपी यज्ञ कर चुके है इसलिये कृतक्रतु २८२ कहलाते है, सदा विद्यमान रहनेसे नित्य २८३ हैं, मृत्युको जीतनेसे मृत्युजय २८४ है, मृत्युसे रहित होनेके कारण अमृत्यु २८५ हैं, आपका आत्मा अमृतके समान सदा शान्तिदायक है इसलिये अमृतात्मा २८६ है और अमृत अर्थात् मोक्षमे आपकी उत्कृष्ट उत्पत्ति होनेवाली है इसलिये आप अमृतोद्भव २८७ कहलाते है ॥१३०॥ आप सदा शुद्ध आत्मस्वरूपमे लीन रहते हैं इसलिये ब्रह्मनिष्ठ २८८ कहलाते है, उत्कृष्ट ब्रह्मरूप है इसलिए परब्रह्म २८९ कहे जाते है ब्रह्म अर्थात् ज्ञान अथवा ब्रह्मचर्य ही आपका स्वरूप है इसलिये आप ब्रह्मात्मा २९० कहलाते है, आपको स्वय शुद्धात्मस्वरूपकी प्राप्ति हुई है तथा आपसे दूसरोको होती है इसलिये आप ब्रह्मसभव २९१ कहलाते हैं गणधर आदि महाब्रह्माओके भी अधिपति है इसलिये महाब्रह्मपति २९२ कहे जाते है, आप केवलज्ञानके स्वामी है इसलिये ब्रह्मेट् २९३ कहलाते है, महाब्रह्मपद अर्थात् आर्हन्त्य और सिद्धत्व अवस्थाके ईश्वर है इसलिये महाब्रह्मपदेश्वर २९४ कहे जाते है ॥१३१॥ आप सदा प्रसन्न रहते है इसलिये सुप्रसन्न २९५ कहे जाते है, आपकी आत्मा कषायोका अभाव हो जानेके कारण सदा प्रसन्न रहती है इसलिये लोग आपको प्रसन्नात्मा २९६ कहते है, आप केवलज्ञान, उत्तमक्षमा आदि धर्म और इन्द्रियनिग्रहरूप दमके स्वामी है इसलिये ज्ञानधर्मदमप्रभु २९७ कहे जाते है, आपकी आत्मा उत्कृष्ट शान्तिसे सहित है इसलिये आप प्रशमात्मा २९८ कहलाते है, आपकी आत्मा कषायोका अभाव हो जानेसे अतिशय शान्त हो चुकी है इसलिये आप प्रशान्तात्मा २९९ कहलाते है, और शलाका पुरुषोमे सबसे उत्कृष्ट है इसलिये विद्वान् लोग आपको पुराणपुरुषोत्तम ३००

---

१ अनन्तज्ञानी । -रनन्तर इ० । २ आगमकृत् । ३ सुखान्त । ४ यमान्तक । ५ सिद्धान्तकर्ता । ६ अविनश्वरोत्पत्ति । ७ आत्मनिष्ठ । ८ ज्ञानेश्वरः ।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः[1] स्रष्टा पद्मविष्टर.। पद्मेश· पद्मसम्भूति.[2] पद्मनाभिरनुत्तरः[3] ॥१३३॥
पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः[4] स्तुत्यः स्तुतीश्वर· । स्तवनार्हो हृषीकेशो[5] जितजेय.[6] कृतक्रिय.[7] ॥१३४॥
गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्य· पुण्यो गणाग्रणीः । गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायक ॥१३५॥
गुणादरी गुणोच्छेदी[8] निर्गुण.[9] पुण्यगीर्गुणः । शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्य· पुण्यनायक. ॥१३६॥

कहते है ॥१३२॥ वडा भारी अशोकवृक्ष ही आपका चिह्न है इसलिये आप महाशोकध्वज ३०१ कहलाते हैं, शोकसे रहित होनेके कारण अशोक ३०२ कहलाते है, सबको सुख देनेवाले है इसलिये 'क' ३०३ कहलाते है, स्वर्ग और मोक्षके मार्गकी सृष्टि करते है इसलिये स्रष्टा ३०४ कहलाते है, आप कमलरूप आसन पर विराजमान है इसलिये पद्मविष्टर ३०५ कहलाते हैं, पद्मा अर्थात् लक्ष्मीके स्वामी हैं इसलिये पद्मेश ३०६ कहलाते है, विहारके समय देव लोग आपके चरणोके नीचे कमलोकी रचना कर देते है इसलिये आप पद्मसभूति ३०७ कहे जाते है, आपकी नाभि कमलके समान है इसलिये लोग आपको पद्मनाभि ३०८ कहते है तथा आपसे श्रेष्ठ अन्य कोई नही है इसलिये आप अनुत्तर ३०९ कहलाते है, ॥१३३॥ हे भगवन्, आपका यह शरीर माताके पद्माकार गर्भाशयमे उत्पन्न हुआ था इसलिये आप पद्मयोनि ३१० कहलाते है, धर्मरूप जगत्की उत्पत्तिके कारण होनेसे जगद्योनि ३११ है, भव्य जीव तपश्चरण आदिके द्वारा आपको ही प्राप्त करना चाहते है इसलिये आप इत्य ३१२ कहलाते है, इन्द्र आदि देवोके द्वारा स्तुति करने योग्य है इसलिये स्तुत्य ३१३ कहलाते है स्तुतियोके स्वामी होनेसे स्तुतीश्वर ३१४ कहे जाते है, स्तवन करनेके योग्य है इसलिये स्तवनार्ह ३१५ कहलाते हैं, इन्द्रियोके ईश अर्थात् वश करनेवाले स्वामी हैं, इसलिए हृषीकेश ३१६ कहे जाते हैं, आपने जीतने योग्य समस्त मोहादि शत्रुओको जीत लिया है इसलिये आप जितजेय ३१७ कहलाते हैं, और आप करने योग्य समस्त क्रियाए कर चुके हैं, इसलिये कृतक्रिय ३१८ कहे जाते है ॥१३४॥ आप बारह सभारूप गणके स्वामी होनेसे गणाधिप ३१९ कहलाते हैं, समस्त गणोमे श्रेष्ठ होनेके कारण गणज्येष्ठ ३२० कहे जाते हैं, तीनो लोकोमे आप ही गणना करनेके योग्य है इसलिये गण्य ३२१ कहलाते हैं पवित्र हैं इसलिये पुण्य ३२२ हैं, समस्त सभामे स्थित जीवोको कल्याणके मार्गमे आगे ले जानेवाले हैं इसलिये गणाग्रणी ३२३ कहलाते हैं, गुणोकी खान हैं इसलिये गुणाकर ३२४ कहे जाते है, आप गुणोके समूह हैं इसलिये गुणाम्भोधि ३२५ कहलाते है, आप गुणोको जानते है इसलिये गुणज्ञ ३२६ कहे जाते है और गुणोके स्वामी है इसलिये गणधर आपको गुणनायक ३२७ कहते हैं ॥१३५॥ गुणोका आदर करते है इसलिये गुणादरी ३२८ कहलाते है, सत्त्व, रज, तम अथवा काम, क्रोध आदि वैभाविक गुणोको नष्ट करनेवाले है इसलिये आप गुणोच्छेदी ३२९ कहे जाते है, आप वैभाविक गुणोसे रहित है इसलिये निर्गुण ३३० कहलाते हैं, पवित्र वाणीके धारक है इसलिये पुण्यगी ३३१ कहे जाते है, गुणोसे युक्त है इसलिये गुण ३३२ कहलाते है, शरणमे आये हुए जीवोकी रक्षा करनेवाले है इसलिये शरण्य ३३३ कहे

१ ब्रह्मा। २ पद्मानां सम्भूतिर्यस्मात् स। सप्तपुर. पृष्ठतश्चेति प्रसिद्धे। ३ न विद्यते उत्तर श्रेष्ठो यस्मात्। ४ गम्य·। ५ इन्द्रियस्वामी। स्ववशीकृतेन्द्रिय इत्यर्थ·। ६ जेतुं योग्या जेया, जिता जेया येनासौ। ७ कृतकृत्य। ८ इन्द्रियच्छेदी। मौर्वी (र्व्यं) प्रधानपारदेन्द्रिय-[illegible]त्यादि[illegible]दिहरितादिषु गुण इत्यभिधानात्। ९ अप्रधान। आत्मन· सकाशादन्य अप्रधान प्रधान न विद्यत इति यावत्।

अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत् पुण्यशासनः । धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥१३७॥
पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः । निर्द्वन्द्वो[1] निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥१३८॥
निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः । निष्कलङ्को निरस्तैना निर्धूतागा[2] निरास्रवः ॥१३९॥
विशालो विपुलज्योतिः अतुलोऽचिन्त्यवैभवः । सुसवृत. सुगुप्तात्मा सुभुत्[3] सुनयतत्त्ववित् ॥१४०॥

जाते है, आपके वचन पवित्र है इसलिये पूतवाक् ३३४ कहलाते है, स्वय पवित्र है इसलिये पूत ३३५ कहे जाते है, श्रेष्ठ है इसलिये वरेण्य ३३६ कहलाते है और पुण्यके अधिपति है इसलिये पुण्यनायक ३३७ कहे जाते है ॥१३६॥ आपकी गणना नही हो सकती अर्थात् आप अपरिमित गुणोके धारक है इसलिये अगण्य ३३८ कहलाते है, पवित्र बुद्धिके धारक होने से पुण्यधी ३३९ कहे जाते है, गुणोसे सहित है इसलिये गुण्य ३४० कहलाते है, पुण्यको करनेवाले है इसलिये पुण्यकृत् ३४१ कहे जाते है, आपका शासन पुण्यरूप अर्थात् पवित्र है इसलिये आप पुण्यशासन ३४२ माने जाने है, धर्मके उपवन स्वरूप होने से धर्माराम ३४३ कहे जाते है, आपमे अनेक गुणोका ग्राम अर्थात् समूह पाया जाता है इसलिये आप गुणग्राम ३४४ कहलाते है, आपने शुद्धोपयोगमे लीन होकर पुण्य और पाप दोनोका निरोध कर दिया है इसलिये आप पुण्यापुण्यनिरोधक ३४५ कहे जाते है ॥१३७॥ आप हिंसादि पापोसे रहित है इसलिये पापापेत ३४६ माने गये है, आपकी आत्मासे समस्त पाप विगत हो गये है इसलिये आप विपापात्मा ३४७ कहे जाते है, आपने पापकर्म नष्ट कर दिये है इसलिये विपाप्मा ३४८ कहलाते है, आपके समस्त कल्मष अर्थात् राग द्वेष आदि भाव कर्मरूपी मल नष्ट हो चुके है इसलिये वीतकल्मष ३४९ माने जाते है, परिग्रह रहित होनेसे निर्द्वन्द्व ३५० है, अहकारसे रहित होनेके कारण निर्मद ३५१ कहलाते है, आपका मोह निकल चुका है, इसलिये आप निर्मोह ३५२ है और उपद्रव उपसर्ग आदिसे रहित है इसलिये निरुपद्रव ३५३ कहलाते है ॥१३८॥ आपके नेत्रोके पलक नही झपते इसलिये आप निर्निमेष ३५४ कहलाते है, आप कवलाहार नही करते इसलिये निराहार ३५५ है, सासारिक क्रियाओंसे रहित है इसलिये निष्क्रिय ३५६ है, बाधा रहित है इसलिये निरुपप्लव ३५८ है, कलक रहित होनेसे निष्कलक ३५९ है, आपने समस्त एनस् अर्थात् पापोको दूर हटा दिया है इसलिये निरस्तैना ३६० कहलाते है, समस्त अपराधोको आपने दूर कर दिया है इसलिये निर्द्धूतागस् ३६१ कहे जाते है, और कर्मोंके आस्रवसे रहित होनेके कारण निरास्रव ३६२ कहलाते है ॥१३९॥ आप सबसे महान् है इसलिये विशाल ३६३ कहे जाते है, केवलज्ञानरूपी विशाल ज्योतिको धारण करनेवाले है इसलिए विपुलज्योति ३६४ माने जाते है, उपमा रहित होनेसे अतुल ३६५ है, आपका वैभव अचिन्त्य है इसलिये अचिन्त्यवैभव ३६६ कहलाते है, आप नवीन कर्मोंका आस्रव रोक कर पूर्ण सवर कर चुके है इसलिये सुसवृत ३६७ कहलाते है, आपकी आत्मा अतिशय सुरक्षित है अथवा मनोगुप्ति आदि गुप्तियोसे युक्त है इसलिये विद्वान् लोग आपको सुगुप्तात्मा ३६८ कहते है, आप समस्त पदार्थोंको अच्छी तरह जानते है इसलिये सुभुत् ३६९ कहलाते है और आप समीचीन नयोके यथार्थ रहस्यको जानते है

---

१ निष्परिग्रह । २ निर्धूताङगो– इ० । ३ सुष्ठु ज्ञाता । सुभृत् इति पाठान्तरम् ।

एकविद्यो महाविद्यो मुनिः[1] परिवृढः पतिः । धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ॥१४१॥
पिता पितामह पाता[2] पवित्रः पावनो गतिः । त्राता भिषग्वरो वर्यो वरद. परमः पुमान् ॥१४२॥
कविः[3] पुराणपुरुषो वर्षीयान्[4] वृषभ.[5] पुरु. । प्रतिष्ठा[6]प्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामह ॥१४३॥
इति महादिशतम् ।
श्रीवृक्षलक्षण. श्लक्ष्णो[7] लक्षण्यः[8] शुभलक्षण· । निरक्ष. पुण्डरीकाक्षणः पुष्कलः पुष्करेक्षण· ॥१४४॥

इसलिये सुनयतत्त्वविद् ३७० कहलाते है ॥१४०॥ आप केवल ज्ञानरूपी एक विद्याको धारण करनेसे एकविद्य ३७१ कहलाते है, अनेक बडी वडी विद्याए धारण करनेसे महाविद्य ३७२ कहे जाते है, प्रत्यक्षज्ञानी होनेसे मुनि ३७३ है, सवके स्वामी है इसलिये परिवृढ ३७४ कहलाते है, जगत्के जीवोकी रक्षा करते है इसलिये पति ३७५ है, वुद्धिके स्वामी है इसलिये धीश ३७६ कहलाते है, विद्याओके भण्डार है इसलिये विद्यानिधि ३७७ माने जाते है, समस्त पदार्थोको प्रत्यक्ष जानते है इसलिये साक्षी ३७८ कहलाते है, मोक्षमार्गको प्रकट करनेवाले है इसलिये विनेता ३७९ कहे जाते है और यमराज अर्थात् मृत्युको नप्ट करनेवाले है इसलिये विहतान्तक ३८० कहलाते है ॥१४१॥ आप सब जीवोकी नरकादि गतियोसे रक्षा करते है इसलिये पिता ३८१ कहलाते है, सवके गुरु है इसलिये पितामह ३८२ कहे जाते है, सवका पालन करनेसे पाता ३८३ कहलाते है, अतिशय शुद्ध है इसलिये पवित्र ३८४ कहे जाते है, सवको शुद्ध या पवित्र करते है इसलिये पावन ३८५ माने जाते है, समस्त भव्य तपस्या करके आपके ही अनुरूप होना चाहते है इसलिये आप सबकी गति ३८६ अथवा खण्डाकार छेद निकालनेपर गतिरहित होनेसे अगति कहलाते है, समस्त जीवोकी रक्षा करनेसे त्राता ३८७ कहलाते है जन्म जरा मरण रूपी रोगको नष्ट करनेके लिये उत्तम वैद्य है इसलिये भिपग्वर ३८८ कहे जाते है, श्रेष्ठ होनेसे वर्य ३८९ है, इच्छानुकूल पदार्थोंको प्रदान करते है इसलिये वरद ३९० कहलाते है, आपकी ज्ञानादि-लक्ष्मी अतिशय श्रेष्ठ है इसलिये परम ३९१ कहे जाते है, और आत्मा तथा पर पुरुपोको पवित्र करनेके कारण पुमान् ३९२ कहलाते है ॥१४२॥ द्वादशाङ्गका वर्णन करनेवाले है इसलिये कवि ३९३ कहलाते है, अनादिकाल होनेसे पुराणपुरुष ३९४ कहे जाते है, ज्ञानादि गुणोकी अपेक्षा अतिशय वृद्ध है इसलिये वर्षीयान् ३९५ कहलाते है, श्रेप्ठ होनेसे ऋपभ ३९६ कहलाते है, तीर्थ करोमे आदिपुरुप होनेसे पुरु ३९७ कहे जाते है, आप प्रनिप्ठा अर्थात् सम्मान अथवा स्थिरताके कारण है इसलिये प्रतिष्ठाप्रसव ३९८ कहलाते है, समस्त उत्तमकार्योंके कारण है इसलिये हेतु ३९९ कहे जाते है, और ससारके एकमात्र गुरु है इसलिये भुवनैकपितामह ४०० कहलाते है, ॥१४३॥

श्रीवृक्षके चिह्नसे चिह्नित है इसलिये श्रीवृक्षलक्षण ४०१ कहे जाते है, सूक्ष्मरूप होनेसे श्लक्ष्ण ४०२ कहलाते है, लक्षणोसे अनपेत अर्थात् सहित है इसलिये लक्षण्य ४०३ कहे जाते है, आपके शरीरमे अनेक शुभ लक्षण विद्यमान है इसलिये शुभलक्षण ४०४ कहलाते है, आप समस्त पदार्थोंका निरीक्षण करनेवाले है अथवा आप नेत्रेन्द्रियके द्वारा दर्शन क्रिया नही करते इसलिये निरीक्ष ४०५ कहलाते है, आपके नेत्र पुण्डरीककमलके समान मुन्दर

---

१ प्रत्यक्षज्ञानी । २ पालक । ३ काव्यकर्ता । ४ वृद्ध । ५ ज्ञानी । ६ प्रतिष्ठायाः स्थैर्यस्य प्रसवो यस्मात् । ७ सूक्ष्म । ८ लक्षणवान् ।

सिद्धिदः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः । बुद्धबोध्यो[1] महाबोधिः वर्धमानो[2] महर्धिकः ॥१४५॥
वेदाङ्गो [3]वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदावरः । [4]वेदवेद्यः स्वसवेद्यो विवेदो वदता वरः ॥१४६॥
अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग् व्यक्तशासनः । युगादिकृद् युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥१४७॥
[5]अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो[6] धीन्द्रो [7]महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक् । अतीन्द्रियोऽहमिन्द्राच्यो महेन्द्रमहितो महान्।१४८

है इसलिये आप पुण्डरीकाक्ष ४०६ कहलाते है, आत्म-गुणोसे खूब ही परिपुष्ट है इसलिये पुष्कल ४०७ कहे जाते है और कमल दलके समान लम्बे नेत्रोको धारण करने वाले होनेसे पुष्करेक्षण ४०८ कहे जाते है ॥१४४॥ सिद्धिको देनेवाले है इसलिये सिद्धिद ४०९ कहलाते है, आपके सब सकल्प सिद्ध हो चुके है इसलिये सिद्धसकल्प ४१० कहे जाते है, आपकी आत्मा सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो चुकी है इसलिये सिद्धात्मा ४११ कहलाते है, आपको सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी मोक्ष-साधन प्राप्त हो चुके है इसलिये आप सिद्धसाधन ४१२ कहलाते है आपने जानने योग्य सब पदार्थोको जान लिया है इसलिये बुद्धबोध्य ४१३ कहे जाते है, आपकी रत्नत्रयरूपी विभूति बहुत ही प्रशसनीय है इसलिये आप महाबोधि ४१४ कहलाते है आपके गुण उत्तरोत्तर बढते रहते है इसलिये आप वर्धमान ४१५ है, और बडी बडी ऋद्धियोको धारण करने वाले है इसलिये महर्द्धिक ४१६ कहलाते हैं ॥१४५॥ आप अनुयोगरूपी वेदोके अग अर्थात् कारण है इसलिये वेदाग ४१७ कहे जाते है, वेदको जाननेवाले है इसलिये वेदवित् ४१८ कहलाते है, ऋषियोके द्वारा जाननेके योग्य है इसलिये वेद्य ४१९ कहे जाते हैं, आप दिगम्बररूप है इसलिये जातरूप ४२० कहे जाते है, जाननेवालोमे श्रेष्ठ है इसलिये विदावर ४२१ कहलाते है, आगम अथवा केवलज्ञानके द्वारा जानने योग्य है इसलिये वेदवेद्य ४२२ कहे जाते है, अनुभवगम्य होनेसे स्वसवेद्य ४२३ कहलाते है, आप तीन प्रकारके वेदोसे रहित है इसलिये विवेद ४२४ कहे जाते है और वक्ताओमे श्रेष्ठ होनेसे वदतावर ४२५ कहलाते है ॥१४६॥ आदि-अन्त रहित होनेसे अनादिनिधन ४२६ कहे जाते है, ज्ञानके द्वारा अत्यन्त स्पष्ट है इसलिये व्यक्त ४२७ कहलाते है, आपके वचन अतिशय स्पष्ट है इसलिये व्यक्तवाक् ४२८ कहे जाते है, आपका शासन अत्यन्त स्पष्ट या प्रकट है इसलिये आपको व्यक्तशासन ४२९ कहते है, कर्मभूमिरूपी युगके आदि व्यवस्थापक होनेसे आप युगादिकृत् ४३० कहलाते है, युगकी समस्त व्यवस्था करने वाले है, इसलिये युगाधार ४३१ कहे जाते है, इस कर्मभूमिरूप युगका प्रारम्भ आपसे ही हुआ था इसलिये आप युगादि ४३२ माने जाते है और आप जगत्के प्रारम्भमे उत्पन्न हुए थे इसलिये जगदादिज ४३३ कहलाते है ॥१४७॥ आपने अपने प्रभाव या ऐश्वर्यसे इन्द्रोको भी अतिक्रान्त कर दिया है इसलिये अतीन्द्र ४३४ कहे जाते है, इन्द्रियगोचर न होनेसे अतीन्द्रिय ४३५ है, बुद्धिके स्वामी होनेसे धीन्द्र ४३६ है, परम ऐश्वर्यका अनुभव करते है इसलिये महेन्द्र ४३७ कहलाते है, अतीन्द्रिय (सूक्ष्म–अन्तरित–दूरार्थ) पदार्थोको देखनेवाले होनेसे अतीन्द्रियार्थदृक् ४३८ कहे जाते है, इन्द्रियोसे रहित है इसलिये अनिन्द्रिय ४३९ कहलाते है अहमिन्द्रोके द्वारा पूजित होनेसे अहमिन्द्राच्य ४४० कहे जाते है, बडे बडे इन्द्रोके द्वारा पूजित होनेसे महेन्द्रमहित ४४१

१ बोद्धु योग्यो बोध्य, बुद्धो बोध्यो येनासौ । २ वा विशेषेण ऋद्ध समृद्ध मान प्रमाण यस्य स । ३ वेदज्ञापक । ४ आगमेन ज्ञेय । ५ अतिशयेनेन्द्रः । ६ इन्द्रियज्ञानमतिक्रान्त । ७ पूजाधिपः ।

उद्भवः[1] कारणं कर्ता पारगो भवतारकः । अगाह्यो गहन[2] गुह्य[3] परार्ध्यः परमेश्वरः ॥१४९॥
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः । [4]प्राग्रचः प्राग्रहरोऽभ्यग्र. प्रत्यग्रोऽग्रचोऽग्रिमोऽग्रजः ॥१५०॥
महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः । महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥१५१॥
महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः । महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युति[5] ॥१५२॥

कहलाते है और स्वय सबसे वडे हैं इसलिये महान् ४४२ कहे जाते हे ॥१४८॥ आप समस्त ससारसे बहुत ऊँचे उठे हुए है अथवा आपका जन्म ससारमे सवसे उत्कृप्ट है इसलिये उद्भव ४४३ कहलाते है, मोक्षके कारण होनेसे कारण ४४४ कहे जाते है, शुद्ध भावोको करते है इसलिये कर्ता ४४५ कहलाते है, ससाररूपी समुद्रके पारको प्राप्त होनेसे पारग ४४६ माने जाते है, आप भव्यजीवोको ससाररूपी समुद्रसे तारनेवाले है इसलिये भवतारक ४४७ कहलाते है, आप किसीके भी द्वारा अवगाहन करने योग्य नही है अर्थात् आपके गुणोको कोई नही समझ सकता है इसलिये आप अगाह्य ४४८ कहे जाते है, आपका स्वरूप अतिशय गम्भीर या कठिन है इसलिये गहन ४४९ कहलाते हैं, गुप्तरूप होनेसे गुह्य ४५० है, सबसे उत्कृष्ट होनेके कारण परार्ध्य ४५१ है और सवसे अधिक समर्थ होनेके कारण परमेश्वर ४५२ माने जाते है ॥१४९॥ आपकी ऋद्धिया अनन्त, अनेय और अचिन्त्य है इसलिये आप अनन्तर्द्धि ५४३, अमेयर्द्धि ४५४ और अचिन्त्यर्द्धि ४५५ कहलाते हैं, आपकी बुद्धि पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुई है इसलिये आप समग्रधी ४५६ है, सबमे मुख्य होनेसे प्राग्र्य ४५७ है, प्रत्येक माङ्गलिक कार्योमे सर्वप्रथम आपका स्मरण किया जाता है इसलिये प्राग्रहर ४५८ है, लोकका अग्रभाग प्राप्त करनेके सन्मुख है इसलिये अभ्यग्न ४५९ है, आप समस्त लोगोसे विलक्षण– नूतन है इसलिये प्रत्यग्र ४६० कहलाते है, सबके स्वामी है इसलिये अग्र्य ४६१ कहे जाते है, सवके अग्रेसर होनेसे अग्रिम ४६२ कहलाते है और सबसे ज्येष्ठ होनेके कारण अग्रज ४६३ कहे जाते हे ॥१५०॥ आपने बड़ा कठिन तपश्चरण किया है इसलिये महातपा ४६४ कहलाते है, आपका वडा भारी तेज चारो ओर फैल रहा है इसलिये आप महातेजा ४६५ है, आपकी तपश्चर्याका उदर्क अर्थात् फल बडा भारी है इसलिये आप महोदर्क ४६६ कहलाते है, आपका ऐश्वर्य वडा भारी है इसलिये आप महोदय ४६७ माने जाते है, आपका वडा भारी यश चारो ओर फैल रहा है इसलिये आप महायशा ४६८ माने जाते है, आप विशाल तेज-प्रताप अथवा ज्ञानके धारक है इसलिये महाधामा ४६९ कहलाते है, आपकी शक्ति अपार है इसलिये विद्वान् लोग आपको महासत्त्व ४७० कहते है, और आपका धीरज महान् है इसलिये आप महाधृति ४७१ कहलाते है ॥१५१॥ आप कभी अधीर नही होते इसलिये महाधैर्य ४७२ कहे जाते है, अनन्त वीर्यके धारक होनेसे महावीर्य ४७३ कहलाते है, समवसरणरूप अद्वितीय विभूतिको धारण करनेसे महासपत् ४७४ माने जाते है, अत्यन्त बलवान् होनेसे महाबल ४७५ कहलाते है, बडी भारी शक्तिके धारक होनेसे महाशक्ति ४७६ माने जाते है, अतिशय कान्ति अथवा केवलज्ञानसे सहित होनेके कारण महाज्योति ४७७ कहलाते है, आपका वैभव अपार है इसलिये आपको महाभूति ४७८ कहते है और आपके

---

१ उद्गतससार । २ दुःप्रवेश्यः । ३ रहस्यम् । ४ प्राग्ग्या[illegible]जपर्यन्ता श्रेष्ठार्थवाचका । ५ महाद्य –ल० ।

महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महोदयः । महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१५३॥
महामहा[1] महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः । महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥१५४॥
महामहपतिः[2] प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः । महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१५५॥
इति श्रीवृक्षादिशतम् ।
महामुनिर्महामौनी महाध्यानो[3] महादमः । महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः[4] ॥१५६॥
महाव्रतपतिर्मह्यो[5] महाकान्तिधरोऽधिपः । महामैत्री महामेयो महोपायो महोमयः[6] ॥१५७॥
महाकारुणिको[7] मन्ता[8] महामन्त्रो महायतिः । महानादो महाघोषो महेज्यो महसा पतिः ॥१५८॥

शरीरकी द्युति बडी भारी है इसलिये आप महाद्युति ४७९ कहे जाते है ॥१५२॥ अतिशय बुद्धिमान् है इसलिये महामति ४८० कहलाते है, अतिशय न्यायवान् है इसलिये महानीति ४८१ कहे जाते है, अतिशय क्षमावान् हैं इसलिये महाक्षान्ति ४८२ माने जाते हैं, अतिशय दयालु है इसलिये महोदय ४८३ कहलाते है, अत्यन्त विवेकवान् होनेसे महाप्राज्ञ ४८४ अत्यन्त भाग्यशाली होनेसे महाभाग ४८५, अत्यन्त आनन्द होनेसे महानन्द ४८६ और सर्वश्रेष्ठकवि होनेसे महाकवि ४८७ माने जाते है ॥१५३॥ अत्यन्त तेजस्वी होनेसे महामहा ४८८, विशाल कीर्तिके धारक होनेसे महाकीर्ति ४८९, अद्भुत कान्तिसे युक्त होनेके कारण महाकान्ति ४९०, उत्तु गशरीरके होनेसे महावपु ४९१, बडे दानी होनेसे महादान ४९२, केवलज्ञानी होनेसे महाज्ञान ४९३, बड़े ध्यानी होनेसे महायोग ४९४, और वडे वडे गुणोके धारक होनेसे महागुण ४९५ कहलाते है ॥१५४॥ आप अनेक बडे बड़े उत्सवोके स्वामी है इसलिये महामहपति ४९६ कहलाते है, आपने गर्भ आदि पाच महाकल्याणको प्राप्त किया है इसलिये प्राप्तमहाकल्याणपञ्चक ४९७ कहे जाते है, आप सबसे बडे स्वामी है इसलिये महाप्रभु ४९८ कहलाते हैं, अशोकवृक्ष आदि आठ महाप्रातिहार्योके स्वामी है इसलिये महाप्रातिहार्याधीश ४९९ कहे जाते है और आप सब देवोके अधीश्वर है इसलिये महेश्वर ५०० कहलाते है ॥१५५॥

सब मुनियोमे उत्तम होनेसे महामुनि ५०१, वचनालाप रहित होनेसे महामौनी ५०२, शुक्लध्यानका ध्यान करनेसे महाध्यानी ५०३, अतिशय जितेन्द्रिय होनेसे महादम ५०४, अतिशय समर्थ अथवा शान्त होनेसे महाक्षम ५०५, उत्तमशीलसे युक्त होनेके कारण महाशील ५०६ और तपश्चरणरूपी अग्निमे कर्मरूपी हविके होम करनेसे महायज्ञ ५०७ और अतिशय पूज्य होनेके कारण महामख ५०८ कहलाते है ॥१५६॥ पाच महाव्रतोके स्वामी होनेसे महाव्रतपति ५०९, जगत्पूज्य होनेसे मह्य ५१०, विशाल कान्तके धारक होनेसे महाकान्तिधर ५११, सबके स्वामी होनेसे अधिप ५१२, सब जीवोके साथ मैत्रीभाव रखनेसे महामैत्रीमय ५१३, अपरिमित गुणोके धारक होनेसे अमेय ५१४, मोक्षके उत्तमोत्तम उपायोसे सहित होनेके कारण महोपाय ५१५ और तेज स्वरूप होनेसे महोमय ५१६ कहलाते है ॥१५७॥ अत्यन्त दयालु होनेसे महाकारुणिक ५१७, सब पदार्थोंको जाननेसे मता ५१८ अनेक मत्रोके स्वामी होनेसे महामन्त्र ५१९, यतियोमे श्रेष्ठ होनेसे महायति ५२०, गम्भीर दिव्यध्वनिके धारक होनेसे महानाद ५२१, दिव्यध्वनिका गभीर उच्चारण होनेके कारण महाघोप ५२२, बड़ी बड़ी पूजाओके अधिकारी होनेसे महेज्य ५२३ और समस्त तेज

---

१ महातेजा । २ महामहाख्यपूजापतिः । ३ ध्यानी—ल० । ४ महापूज । ५ पूज्य । ६ उत्कृष्टबोध. । ७ महाकरुणया चरतीति । ८ ज्ञाता ।

[1]महाध्वरधरो धुर्यो[2] महौदार्यो महिष्ठवाक् । महात्मा महसां धाम महर्षिर्महितोदयः ॥१५९॥
महाक्लेशाङ्कुश शूरो [3]महाभूतपतिर्गुरु· । महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥१६०॥
महाभवाब्धिसन्तारी महामोहाद्रिसूदनः[4] । महागुणाकर. क्षान्तो महायोगीश्वर· शमी ॥१६१॥
महाध्यानपतिर्ध्यातमहाधर्मा महाव्रत. । [5]महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥१६२॥
सर्वक्लेशापह साधु. सर्वदोषहरो हर । असङ्ख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकर. ॥१६३॥
सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्य· श्रुतात्मा विष्टरश्रवा[6] । दान्तात्मा[7] दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वग. ॥१६४॥

अथवा प्रतापके स्वामी होनेसे महसापति ५२४ कहलाते है ॥१५८॥ ज्ञानरूपी विशाल यज्ञके धारक होनेसे महाध्वरधर ५२५, कर्मभूमिका समस्त भार सभालने अथवा सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण धुर्य ५२६, अतिशय उदार होनेसे महौदार्य ५२७, श्रेष्ठ वचनोसे युक्त होनेके कारण महेष्ठवाक् ५२८, महान् आत्माके धारक होनेसे महात्मा ५२९, समस्त तेजके स्थान होनेसे महसाधाम ५३०, ऋषियोमे प्रधान होनेसे महर्षि ५३१, और प्रशस्त जन्मके धारक होनेसे महितोदय ५३२ कहलाते है ॥१५९॥ वडे वडे क्लेशोको नष्ट करनेके लिये अकुशके समान है इसलिये महाक्लेशाकुश ५३३ कहलाते है, कर्मरूपी शत्रुओका क्षय करनेमे शूरवीर है इसलिये शूर ५३४ कहे जाते है, गणधर आदि वडे-वडे प्राणियो के स्वामी है इसलिये महाभूतपति ५३५ कहे जाते है, तीनो लोकोमे श्रेष्ठ है इसलिये गुरु ५३६ कहलाते है, विशाल पराक्रमके धारक है इसलिये महापराक्रम ५३७ कहे जाते है, अन्त रहित होनेसे अनन्त ५३८ है, क्रोधके वडे भारी शत्रु होनेसे महाक्रोधरिपु ५३९ कहे जाते है और समस्त इन्द्रियोको वश कर लेनेसे वशी ५४० कहलाते है ॥१६०॥ ससाररूपी महासमुद्रसे पार कर देनेके कारण महाभवाब्धिसतारी ५४१ मोहरूपी महाचलके भेदन करनेसे महामोहाद्रिसूदन ५४२, सम्यग्दर्शन आदि वडे वडे गुणोकी खान होनेसे महागुणाकर ५४३, क्रोधादि कषायोको जीत लेनेसे क्षान्त ५४४, वडे वडे योगियो—मुनियोके स्वामी होनेसे महायोगीश्वर ५४५ और अतिशय शान्त परिणामी होनेसे शमी ५४६ कहलाते है ॥१६१॥ शुक्लध्यानरूपी महाध्यानके स्वामी होनेसे महाध्यानपति ५४७, अहिंसारूपी महाधर्मका ध्यान करनेसे ध्यातमहाधर्म ५४८, महाव्रतोको धारण करनेसे महाव्रत ५४९, कर्मरूपी महाशत्रुओको नष्ट करनेसे महाकर्मारिहा ५५०, आत्मस्वरूपके जानकार होनेसे आत्मज्ञ ५५१, सव देवोमे प्रधान होनेसे महादेव ५५२, और महान् सामर्थ्यसे सहित होनेके कारण महेशिता ५५३, कहलाते है ॥१६२॥ सब प्रकारके क्लेशोको दूर करनेसे सर्वक्लेशापह ५५४, आत्मकल्याण सिद्धि करनेसे साधु ५५५, समस्त दोषोको दूर करनेसे सर्वदोषहर ५५६, समस्त पापोको नष्ट करनेके कारण हर ५५७, असख्यात गुणोको धारण करनेसे असख्येय ५५८, अपरिमित शक्तिको धारण करनेसे अप्रमेयात्मा ५५९, शान्तस्वरूप होनेसे शमात्मा ५६०, और उत्तमशान्तिकी खान होनेसे प्रशमाकर ५६१ कहलाते है ॥१६३॥ सब मुनियोके स्वामी होनेसे सर्वयोगीश्वर ५६२, किसीके चिन्तवनमे न आनेसे अचिन्त्य ५६३, भावश्रुतरूप होनेसे श्रुतात्मा ५६४, तीनो लोकोके समस्त पदार्थोको जाननेसे विष्टरश्रवा ५६५, मनको वश करनेसे दान्तात्मा ५६६, सयमरूप तीर्थके स्वामी होनेके कारण दमतीर्थेश ५६७, योगमय

---

१ महायज्ञधारी । २ धुरन्धर । ३ गणधरचक्रधरादीनामीश । ४ नाशक । ५ सयुक्त । ६ विष्ट प्रवेश राति ददातीति विष्टर विष्टर श्रवो ज्ञान यस्य स । ७ शिक्षितात्मा ।

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः[1] परमोदयः । प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत् क्षेमशासनः ॥१६५॥
[2]प्रणवः प्रणतः प्राणः प्राणदः प्राण[3]तेश्वरः । प्रमाणं प्रणि[4]धिर्दक्षो दक्षि[5]णोऽध्वर्यु[6]रध्वरः ॥१६६॥
आनन्दो नन्दनो[7] नन्दो[8] वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः[9] । कामहा[10] कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः ॥१६७॥
इति महामुन्यादिशतम् ।
[11]असंस्कृतः सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत्[12] । [13]अन्तकृत् कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ॥१६८॥
अजितो जितकामारिः अमितोमितशासनः । जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥१६९॥

होनेसे योगात्मा ५६८, और ज्ञानके द्वारा सब जगह व्याप्त होनेके कारण ज्ञानसर्वग ५६९ कहलाते हैं ॥१६४॥ एकाग्रतासे आत्माका ध्यान करने अथवा तीनो लोकोमे प्रमुख होनेसे प्रधान ५७०, ज्ञानस्वरूप होनेसे आत्मा ५७१, प्रकृष्ट कार्योंके होनेसे प्रकृति ५७२, उत्कृष्ट लक्ष्मीके धारक होनेसे परम ५७३, उत्कृष्ट उदय अर्थात् जन्म या वैभवको धारण करनेसे परमोदय ५७४, कर्मबन्धनके क्षीण हो जानेसे प्रक्षीणबन्ध ५७५, कामदेव अथवा विषयाभिलाषाके शत्रु होनेसे कामारि ५७६, कल्याणकारी होनेसे क्षेमकृत् ५७७ और मगलमय उपदेशके देनेसे क्षेमशासन ५७८ कहलाते हैं ॥१६५॥ ओंकाररूप होनेसे प्रणव ५७९, स्नेहरूप होने अथवा भव्य जीवोको इष्टस्थानके प्राप्त करानेसे प्रणत ५८०, जगत्को जीवित रखनेसे प्राण ५८१, सब जीवोके प्राणदाता अर्थात् रक्षक होनेसे प्राणद ५८२, नम्रीभूत भव्य जनोके स्वामी होनेसे प्रणतेश्वर ५८३, प्रमाण अर्थात् ज्ञानमय होनेसे प्रमाण ५८४, अनन्तज्ञान आदि उत्कृष्ट निधियोके स्वामी होनेसे प्रणिधि ५८५, समर्थ अथवा प्रवीण होनेसे दक्ष ५८६, सरल होनेसे दक्षिण ५८७, ज्ञानरूप यज्ञ करनेसे अध्वर्यु ५८८ और समीचीन मार्गके प्रदर्शक होनेसे अध्वर ५८९कहलाते हैं ॥१६६॥ सदा सुखरूप होनेसे आनन्द ५९०, सबको आनन्द देनेसे नन्दन ५९१, सदा समृद्धिमान् होते रहनेसे नन्द ५९२, इन्द्र आदिके द्वारा वन्दना करने योग्य होनेसे वन्द्य ५९३, निन्दारहित होनेसे अनिन्द्य ५९४, प्रशसनीय होनेसे अभिनन्दन ५९५, कामदेवको नष्ट करनेसे कामहा ५९६, अभिलषित पदार्थोको देनेसे कामद ५९७, अत्यन्त मनोहर अथवा सबके द्वारा चाहनेके योग्य होनेसे काम्य ५९८, सबके मनोरथ पूर्ण करनेसे कामधेनु ५९९ और कर्मरूप शत्रुओको जीतनेसे अरिजय ६०० कहलाते हैं ॥१६७॥

किसी अन्यके द्वारा सस्कृत हुए विना ही उत्तम सस्कारोको धारण करनेसे असस्कृत-सुसस्कार ६०१, स्वाभाविक होनेसे प्राकृत ६०२, रागादि विकारोका नाश करनेसे वैकृतान्तकृत् ६०३, अन्त अर्थात् धर्म अथवा जन्ममरणरूप ससारका अवसान करनेवाले होनेसे अन्तकृत् ६०४, सुन्दर कान्ति, वचन अथवा इन्द्रियोके धारक होनेसे कान्तगु ६०५, अत्यन्त सुन्दर होनेसे कान्त ६०६, इच्छित पदार्थ देनेसे चिन्तामणि ६०७, और भव्यजीवोके लिये अभीष्ट—स्वर्ग मोक्षके देनेसे अभीष्टद ६०८ कहलाते हैं ॥१६८॥ किसीके द्वारा जीते नही जा सकनेके कारण अजित ६०९, कामरूप शत्रुको जीतनेसे जितकामारि ६१०, अवधिरहित होनेके कारण अमित ६११, अनुपम धर्मका उपदेश देनेसे अमितशासन ६१२, क्रोधको जीतनेसे जितक्रोध ६१३, शत्रुओको जीत लेनेसे जितामित्र ६१४,

---

१ परा उत्कृष्टा मा लक्ष्मीर्यस्य स परम । २ ओकार । ३ प्रकर्षेणानतामीश्वर । प्रणतेश्वर - ब०, अ०, प०, स०, द०, ल०, इ० । ४ चार । ५ ऋजु । ६ होता । ७ नन्दयतीति नन्दन । ८ वर्धमान । ९ अभिनन्दयतीति । १० काम हन्तीति । ११ असस्कृतसुसस्कारोऽप्राकृतो— ल० । १२ विकारस्य नाशकारी । १३ अन्त नाश कृतर्तीति ।

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः । महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥१७०॥
नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः । अभेद्योऽनत्यय[1]योऽनाश्वा[2]नधिकोऽधिगुरुः सुधीः[3] ॥१७१॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो[4] निरुत्सुकः । विशिष्टः[5] शिष्टभुक्[6] शिष्टः प्रत्ययः कामनो[7]ऽनघः ।१७२।
क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी । अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो[8] ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥१७३॥
सुकृती धातु[9]रिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः । श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥१७४॥

क्लेशोको जीत लेनेसे जितक्लेश ६१५ और यमराजको जीत लेनेसे जितान्तक ६१६ कहे जाते है ॥१६९॥ कर्मरूप शत्रुओको जीतनेवालोमे श्रेष्ठ होनेसे जिनेन्द्र ६१७, उत्कृष्ट आनन्दके धारक होनेसे परमानन्द ६१८, मुनियोके नाथ होनेसे मुनीन्द्र ६१९, दुन्दुभिके समान गभीर ध्वनिसे युक्त होनेके कारण दुन्दुभिस्वन ६२०, वडे वडे इन्द्रोके द्वारा वन्दनीय होनेसे महेन्द्रवन्द्य ६२१, योगियोके स्वामी होनेसे योगीन्द्र ६२२, यतियोके अधिपति होनेसे यतीन्द्र ६२३ और नाभिमहाराजके पुत्र होनेसे नाभिनन्दन ६२४ कहलाते है ॥१७०॥ नाभिराजाकी सन्तान होनेसे नाभेय ६२५, नाभिमहाराजसे उत्पन्न होनेके कारण नाभिज ६२६, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा जन्मरहित होनेसे अजात ६२७, उत्तम व्रतोके धारक होनेसे सुव्रत ६२८, कर्मभूमिकी समस्त व्यवस्था वताने अथवा मनन-ज्ञानरूप होनेसे मनु ६२९, उत्कृष्ट होनेसे उत्तम ६३०, किसीके द्वारा भेदन करने योग्य न होनेसे अभेद्य ६३१, विनाशरहित होनेसे अनत्यय ६३२, तपश्चरण करनेसे अनाश्वान् ६३३, सवमे श्रेष्ठ होने अथवा वास्तविक सुख प्राप्त होनेसे अधिक ६३४, श्रेष्ठ गुरु होनेसे अधिगुरु ६३५ और उत्तम वचनोके धारक होनेसे सुधी ६३६ कहलाते है ॥ १७१ ॥ उत्तम बुद्धि होनेसे सुमेधा ६३७, पराक्रमी होनेसे विक्रमी ६३८, सवके अधिपति होनेसे स्वामी ६३९, किसीके द्वारा अनादर हिंसा अथवा निवारण आदि नही किये जा सकनेके कारण दुराधर्ष ६४०, सासारिक विषयोकी उत्कण्ठासे रहित होनेके कारण निरुत्सुक ६४१, विशेषरूप होनेसे विशिष्ट ६४२, शिष्ट पुरुषोका पालन करनेसे शिष्टभुक् ६४३, सदाचारपूर्ण होनेसे शिष्ट ६४४, विश्वास अथवा ज्ञानरूप होनेसे प्रत्यय ६४५, मनोहर होनेसे कामन ६४६ और पापरहित होनेसे अनघ ६४७ कहलाते है ॥१७२॥ कल्याणसे युक्त होनेके कारण क्षेमी ६४८, भव्य जीवोका कल्याण करनेसे क्षेमकर ६४९, क्षयरहित होनेसे अक्षय ६५०, कल्याणकारी धर्मके स्वामी होनेसे क्षेमधर्मपति ६५१, क्षमासे युक्त होनेके कारण क्षमी ६५२, अल्पज्ञानियोके ग्रहणमे न आनेसे अग्राह्य ६५३, सम्यग्ज्ञानके द्वारा ग्रहण करनेके योग्य होनेसे ज्ञाननिग्राह्य ६५४, ध्यानके द्वारा जाने जा सकनेके कारण ज्ञानगम्य ६५५ और सवसे उत्कृष्ट होनेके कारण निरुत्तर ६५६ है ॥१७३॥ पुण्यवान् होनेसे सुकृती ६५७, शब्दोके उत्पादक होनेसे धातु ६५८, पूजाके योग्य होनेसे इज्यार्ह ६५९, समीचीन नयोसे सहित होनेके कारण सुनय ६६०, लक्ष्मीके निवास होनेसे श्रीनिवास ६६१, और समवसरणमे अतिशय विशेषसे चारो ओर मुख दिखनेके कारण चतुरानन ६६२, चतुर्वक्त्र ६६३, चतुरास्य ६६४, और चतुर्मुख ६६५ कहलाते है ॥१७४॥

---

१ नाशरहित । 'दिष्टान्त प्रत्ययोऽत्यय' इत्यभिधानात् । २ अनशनव्रती । ३ सुधी – अ०, [illegible] स० । ४ धृष्ट । ५ विशिष्यत इति । ६ शिष्टपालक । ७ रमणीय । ८ ज्ञानेन [illegible] ग्राह्य । ९ शब्दयोनिः ।

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक् सत्यशासन । सत्याशी[1] सत्यसन्धान.' सत्य सत्यपरायण ॥१७५॥
स्थेयान्[2] स्थवीयान्ने[3]दीयान्[4] दवीयान्[5] दूरदर्शन । अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥१७६॥
सदायोग. सदाभोग सदातृप्त सदाशिवः । सदागति. सदासौख्य सदाविद्य सदोदय ॥१७७॥
सुघोषः सुमुख सौम्य. सुखदः सुहितः सुहृत् । सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता[6] लोकाध्यक्षो दमीश्वर ।१७८॥
इति असस्कृतादिशतम् ।
बृहद्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधी । मनीषी धिषणो धीमान् शेमुषीशो गिरा पति. ॥१७९॥
नैकरूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत् । अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञ. [7]कृतलक्षण ॥१८०॥

सत्य-स्वरूप होनेसे सत्यात्मा ६६६, यथार्थ विज्ञानसे सहित होनेके कारण सत्य विज्ञान ६६७, सत्यवचन होनेसे सत्यवाक् ६६८, सत्यधर्मका उपदेश देनेसे सत्यशासन ६६९, सत्य आशीर्वाद होनेसे सत्याशी, ६७०, सत्यप्रतिज्ञ होनेसे सत्यसधान ६७१, सत्यरूप होनेसे सत्य ६७२, और सत्यमे ही निरन्तर तत्पर रहनेसे सत्यपरायण ६७३ कहलाते है ॥१७५॥ अत्यन्त स्थिर होनेसे स्थेयान् ६७४, अतिशय स्थूल होनेसे स्थवीयान् ६७५, भक्तोंके समीपवर्ती होनेसे नेदीयान् ६७६, पापोसे दूर रहनेके कारण दवीयान् ६७७, दूरसे ही दर्शन होनेके कारण दूरदर्शन ६७८, परमाणुसे भी सूक्ष्म होनेके कारण अणो अणीयान् ६७९, अणुरूप न होनेसे अनणु ६८० और गुरुओमे भी श्रेष्ठ गुरु होने से गरीयसामाद्य* गुरु ६८१ कहलाते है ॥१७६॥ सदा योगरूप होनेसे सदायोग ६८२, सदा आनन्दके भोक्ता होनेसे सदाभोग ६८३, सदा सतुष्ट रहनेसे सदातृप्त ६८४, सदा कल्याणरूप रहनेसे सदा शिव ६८५, सदा ज्ञानरूप रहनेसे सदागति ६८६, सदा सुखरूप रहनेसे सदासौख्य ६८७, सदा केवलज्ञानरूपी विद्यासे युक्त होनेके कारण सदाविद्य ६८८ और सदा उदयरूप रहनेसे सदोदय ६८९ माने जाते है ॥१७७॥ उत्तमध्वनि होनेसे सुघोष ६९०, सुन्दर मुख होनेसे सुमुख ६९१, शान्तरूप होनेसे सौम्य ६९२, सब जीवोको सुखदायी होनेसे सुखद ६९३, सबका हित करनेसे सुहित ६९४, उत्तम हृदय होनेसे सुहृत् ६९५, सुरक्षित अथवा मिथ्यादृष्टियोके लिये गूढ होनेसे सुगुप्त ६९६, गुप्तियोको धारण करनेसे गुप्तिभृत् ६९७, सबके रक्षक होनेसे गोप्ता ६९८, तीनो लोकोका साक्षात्कार करनेसे लोकाध्यक्ष ६९९, और इन्द्रियविजयरूपी दमके स्वामी होनेसे दमेश्वर ७०० कहलाते है ।१७८॥

इन्द्रोके गुरु होनेसे बृहद्बृहस्पति ७०१, प्रशस्त वचनोके धारक होनेसे वाग्मी ७०२, वचनोके स्वामी होनेसे वाचस्पति ७०३, उत्कृष्ट बुद्धिके धारक होनेसे उदारधी ७०४, मनन शक्तिसे युक्त होनेके कारण मनीषी ७०५, चातुर्यपूर्ण बुद्धिसे सहित होनेके कारण धिषण ७०६, धारण पटु बुद्धिसे सहित होनेके कारण धीमान् ७०७, बुद्धिके स्वामी होनेसे शेमुषीश ७०८, और सब प्रकारके वचनोके स्वामी होनेसे गिरापति ७०९, कहलाते है ॥१७९॥ अनेकरूप होनेसे नैकरूप ७१०, नयोके द्वारा उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त होनेसे नयोत्तुङ्ग ७११, अनेक गुणोको धारण करनेसे नैकात्मा ७१२, वस्तुके अनेक धर्मोंका उपदेश देनेसे नैकधर्मकृत् ७१३, साधारण पुरुषोके द्वारा जाननेके अयोग्य होनेसे अविज्ञेय ७१४,

---

१ सत्यप्रतिज्ञ । २ स्थिरतर । ३ स्थूलतर । ४ समीपस्थ । ५ दूरस्थ । ६ रक्षक । ७ सम्पूर्णलक्षण ।

*यहापर 'गरीयसामाद्य' और गरीयसा गुरु' इस प्रकार दो नाम भी निकलते है परन्तु इस पक्षमें ६२७ और ६२८ इन दो नामोके स्थानमें 'जातसुव्रत' ऐसा एक नाम माना जाता है ।

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः । पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥१८१॥
लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो द्रढीयानिन ईशिता । मनोहरो मनोज्ञाङ्गो[1] धीरो गम्भीरशासनः ॥१८२॥
धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः । धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥१८३॥
अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः । सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥१८४॥
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक् स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः[2] । अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥१८५॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः । प्रशान्तोऽनन्त[3]धामर्षिर्मङ्गलं[4] मलहानघः ॥१८६॥

तर्क-वितर्करहित स्वरूपसे युक्त होनेके कारण अप्रतर्क्यात्मा ७१५, समस्त कृत्य जाननेसे कृतज्ञ ७१६ और समस्त पदार्थोंका लक्षणस्वरूप बतलानेसे कृतलक्षण ७१७ कहलाते हैं ॥१८०॥ अन्तरङ्गमे ज्ञान होनेसे ज्ञानगर्भ ७१८, दयालुहृदय होनेसे दयागर्भ ७१९, रत्नत्रयसे युक्त होनेके कारण अथवा गर्भ कल्याणके समय रत्नमयी वृष्टि होनेसे रत्नगर्भ ७२०, देदीप्यमान होनेसे प्रभास्वर ७२१, कमलाकार गर्भाशयमे स्थित होनेके कारण पद्मगर्भ ७२२, ज्ञानके भीतर समस्त जगत्के प्रतिबिम्बित होनेसे जगद्गर्भ ७२३, गर्भ-वासके समय पृथिवीके सुवर्णमय होजाने अथवा सुवर्णमय वृष्टि होनेसे हेमगर्भ ७२४ और सुन्दर दर्शन होनेसे सुदर्शन ७२५ कहलाते हैं ॥१८१॥ अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग लक्ष्मीसे युक्त होनेके कारण लक्ष्मीवान् ७२६, देवोंके स्वामी होनेसे त्रिदशाध्यक्ष ७२७, अत्यन्त दृढ़ होनेसे द्रढीयान् ७२८, सबके स्वामी होनेसे इन ७२९, सामर्थ्यशाली होनेसे ईशिता ७३०, भव्यजीवोंका मनहरण करनेसे मनोहर ७३१, सुन्दर अंगोंके धारक होनेसे मनोज्ञाङ्ग ७३२, धैर्यवान् होनेसे धीर ७३३ और शासनकी गम्भीरता से गम्भीरशासन ७३४ कहलाते हैं ॥१८२॥ धर्मके स्तम्भरूप होनेसे धर्मयूप ७३५, दयारूप यज्ञके करनेवाले होनेसे दयायाग ७३६, धर्मरूपी रथकी चक्रधारा होनेसे धर्मनेमि ७३७, मुनियोंके स्वामी होनेसे मुनीश्वर ७३८, धर्मचक्ररूपी शस्त्रके धारक होनेसे धर्मचक्रायुध ७३९, आत्मगुणोमे क्रीडा करनेसे देव ७४०, कर्मोंका नाश करनेसे कर्महा ७४१, और धर्मका उपदेश देनेसे धर्मघोषण ७४२ कहलाते हैं ॥१८३॥ आपके वचन कभी व्यर्थ नही जाते इसलिये अमोघवाक् ७४३, आपकी आज्ञा कभी निष्फल नही होती इसलिये अमोघाज्ञ ७४४, मल रहित हैं इसलिये निर्मल ७४५, आपका शासन सदा सफल रहता है इसलिये अमोघशासन ७४६, सुन्दर रूपके धारक हैं इसलिये सुरूप ७४७, उत्तम ऐश्वर्य से युक्त हैं इसलिये सुभग ७४८, आपने पर पदार्थोंका त्याग कर दिया है इसलिये त्यागी ७४९, सिद्धान्त, समय अथवा आचारके ज्ञाता हैं इसलिये समयज्ञ ७५० और समाधानरूप हैं इसलिये समाहित ७५१ कहलाते हैं ॥१८४॥

सुखपूर्वक स्थित रहनेसे सुस्थित ७५२, आरोग्य अथवा आत्मस्वरूपकी निश्चलताको प्राप्त होनेसे स्वास्थ्यभाक् ७५३, आत्मस्वरूपमे स्थित होनेसे स्वस्थ ७५४, कर्मरूप रजसे रहित होनेके कारण नीरजस्क ७५५, सासारिक उत्सवोसे रहित होनेके कारण निरुद्धव ७५६, कर्मरूपी लेपसे रहित होनेके कारण अलेप ७५७, कलङ्करहित आत्मासे युक्त होनेके कारण निष्कलङ्कात्मा ७५८, राग आदि दोषोसे रहित होनेके कारण वीतराग ७५९ और सासारिक विषयोकी इच्छासे रहित होनेके कारण गतस्पृह ७६० कहलाते हैं ॥१८५॥ आपने इन्द्रियोको वश कर लिया है इसलिये वश्येन्द्रिय ७६१ कहलाते हैं आपकी आत्मा कर्मबन्धनसे

---

१ मनोज्ञार्हो– इ० । २ उत्कृष्टो धव उद्धवः उद्धवः निष्क्रान्तो निरुद्धवः । ३ अनन्ततेजा । केवल मम इत्येति ।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचर । अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥१८७॥
अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद् योगिवन्दितः । सर्वत्रग सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१८८॥
शकरः शवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायण । अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञ परापर ॥१८९॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदय. । त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणि. ॥१९०॥
इति बृहदादिशतम् ।

छूट गई है इसलिये विमुक्तात्मा ७६२ कहे जाते है, आपका कोई भी शत्रु या प्रतिद्वन्द्वी नही है इसलिये नि सपत्न ७६३ कहलाते है, इन्द्रियोको जीत लेनेसे जितेन्द्रिय ७६४ कहे जाते है, अत्यन्त शान्त होने से प्रशान्त ७६५ है, अनन्ततेजके धारक ऋषि होनेसे अनन्त धामर्षि ७६६ है, मगलरूप होनेसे मङ्गल ७६७ है, मलको नष्ट करनेवाले है इसलिये मलहा ७६८ कहलाते है और व्यसन अथवा दु खसे रहित है इसलिये अनघ ७६९ कहे जाते है* ॥१८६॥ आपके समान अन्य कोई नही है इसलिये आप अनीदृक् ७७० कहलाते है, सबके लिये उपमा देने योग्य है इसलिये उपमाभूत ७७१ कहे जाते है, सब जीवोके भाग्यस्वरूप होनेके कारण दिष्टि ७७२ और दैव ७७३ कहलाते है, इन्द्रियोके द्वारा जाने नही जा सकते अथवा केवलज्ञान होनेके बाद ही आप गो अर्थात् पृथिवीपर विहार नही करते किन्तु आकाशमे गमन करते है इसलिये अगोचर ७७४ कहे जाते है, रूप रस गन्ध स्पर्शसे रहित होनेके कारण अमूर्त ७७५ है, शरीरसहित है इसलिये मूर्तिमान् ७७६ कहलाते है, अद्वितीय है इसलिये एक ७७७ कहे जाते है, अनेक गुणोसे सहित है इसलिये नैक ७७८ कहलाते है और आत्माको छोडकर आप अन्य अनेक पदार्थोको नही देखते—उनमे तल्लीन नही होते इसलिये नानैकतत्त्वदृक् ७७९ कहे जाते है ॥१८७॥ अध्यात्मशास्त्रोके द्वारा जानने योग्य होनेसे अध्यात्मगम्य ७८०, मिथ्यादृष्टि जीवोके जानने योग्य न होनेसे अगम्यात्मा ७८१, योगके जानकार होनेसे योगविद् ७८२, योगियोके द्वारा वन्दना किये जानेसे योगिवन्दित ७८३ केवल ज्ञानकी अपेक्षा सब जगह व्याप्त होनेसे सर्वत्रग ७८४, सदा विद्यमान रहनेसे सदाभावी ७८५, और त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोको देखनेसे त्रिकालविषयार्थदृक् ७८६ कहलाते है, ॥१८८॥ सबको सुखके करनेवाले होनेसे शकर ७८७, सुखके बतलानेवाले होनेसे शवद ७८८, मनको वश करनेसे दान्त ७८९, इन्द्रियोका दमन करनेसे दमी ७९०, क्षमा धारण करनेमे तत्पर होनेसे क्षान्तिपरायण ७९१, सबके स्वामी होनेसे अधिप ७९२, उत्कृष्ट आनन्दरूप होनेसे परमानन्द ७९३, उत्कृष्ट अथवा पर और निजकी आत्माको जाननेसे परात्मज्ञ ७९४, और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ होनेके कारण परात्पर ७९५ कहलाते है ॥१८९॥ तीनो लोकोके प्रिय अथवा स्वामी होनेसे त्रिजगद्वल्लभ ७९६, पूजनीय होनेसे अभ्यर्च्य ७९७, तीनो लोकोमे मगलदाता होनेसे त्रिजगन्मगलोदय ७९८, तीनो लोकोके इन्द्रो द्वारा पूजनीय चरणोसे युक्त होनेके कारण त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रि ७९९ और कुछ समयके बाद तीनो लोकोके अग्रभागपर चूडामणिके समान विराजमान होनेके कारण त्रिलोकाग्रशिखामणि ८०० कह-

---

१ प्रमाणानुपातिनी मति । २ स्तुत्यम् । ३ अनेकैकतत्त्वदर्शी । ४ ध्यानगोचर । ५ नित्याभिप्रायवान् । ६ दमित. । ७ सार्वकालीनः । परात्पर – ल० ।

*यद्यपि ६४७ वा नाम भी अनघ है इसलिये ७६९ वा अनघ नाम पुनरुक्त सा मालूम होता है परन्तु अघ शब्दके 'अघ तु व्यसने दु खे दुरिते च नपुसकम्' अनेक अर्थ होनेसे पुनरुक्तिका दोष दूर हो जाता है ।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रत । सर्वलोकातिग पूज्य सर्वलोकैक[1]सारथि. ॥१९१॥
पुराण. पुरुषः पूर्वं कृतपूर्वाङ्गविस्तर । आदिदेव पुराणाद्य पुरुदेवोऽधिदेवता ॥१९२॥
युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशक· । कल्याणवर्णं कल्याण कल्य[2] कल्याणलक्षण ॥१९३॥
कल्याणप्रकृतिर्दीप्र[3]कल्याणात्मा विकल्मष । विकलङ्क· कलातीत कलिलघ्न. कलाधर. ॥१९४॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभु. । जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो[4] जगदग्रग ॥१९५॥
चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढ[5]गोचर. । सद्योजात. प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभ ॥१९६॥

जाते है ॥१९०॥ तीनो कालसम्बन्धी समस्त पदार्थोको देखनेवाले है इसलिये त्रिकालदर्शी ८०१, लोकोके स्वामी होनेसे लोकेश ८०२, समस्त लोगोके पोपक या रक्षक होनेसे लोकधाता ८०३, व्रतोको स्थिर रखनेसे दृढव्रत ८०४, सव लोकोसे श्रेप्ठ होनेके कारण सर्वलोकातिग ८०५, पूजाके योग्य होनेसे पूज्य ८०६, और सव लोगोको मुख्यरूपसे अभीप्ट स्थान तक पहुँचानेमे समर्थ होनेसे सर्वलोकैकसारथि ८०७ कहलाते है ॥१९१॥ सवसे प्राचीन होनेसे पुराण ८०८, आत्माके श्रेष्ठ गुणोको प्राप्त होनेसे पुरुप ८०९, सर्व प्रथम होनेसे पूर्व ८१०, अङ्ग और पूर्वोका विस्तार करनेसे कृतपूर्वाङ्गविस्तर ८११, सव देवोमे मुख्य होनेसे आदिदेव ८१२, पुराणोमे प्रथम होनेसे पुराणाद्य ८१३, महान् अथवा प्रथम तीर्थ कर होनेसे पुरुदेव ८१४, और देवोके भी देव होनेसे अधिदेवता ८१५, कहलाते हैं ॥१९२॥ इस अवसर्पिणी युगके मुख्य पुरुप होनेसे युगमुख्य ८१६, इसी युगमे सवसे वडे होनेसे युगज्येष्ठ ८१७, कर्मभूमिरूप युगके प्रारम्भमे तत्कालोचित मर्यादाके उपदेशक होनेसे युगादिस्थितिदेशक ८१८, कल्याण अर्थात् सुवर्णके समान कान्तिके धारक होनेसे कल्याणवर्ण ८१९, कल्याणरूप होनेसे कल्याण ८२०, मोक्ष प्राप्त करनेमे सज्ज अर्थात् तत्पर अथवा निरामय-नीरोग होनेसे कल्य ८२१, और कल्याणकारी लक्षणोसे युक्त होनेके कारण कल्याणलक्षण ८२२ कहलाते है ॥१९३॥ आपका स्वभाव कल्याण-रूप है इसलिये आप कल्याण प्रकृति ८२३ कहलाते हैं, आपकी आत्मा देदीप्यमान सुवर्णके समान निर्मल है इसलिये आप दीप्रकल्याणात्मा ८२४ कहे जाते हैं, कर्मकालिमासे रहित है इसलिये विकलमप ८२५ कहलाते हैं, कलङ्करहित है इसलिये विकलङ्क ८२६ कहे जाते हैं, शरीररहित है इसलिये कलातीत ८२७ कहलाते है, पापोको नप्ट करने वाले है इसलिये कलिलघ्न ८२८ कहे जाते हैं, ओर अनेक कलाओको धारण करने वाले है इसलिये कलाधर ८२९ माने जाते है ॥१९४॥ देवोके देव होनेसे देवदेव ८३०, जगत्के स्वामी होनेसे जगन्नाथ ८३१, जगत्के भाई होनेसे जगद्बन्धु ८३२, जगत्के स्वामी होनेसे जगद्विभु ८३३, जगत्का हित चाहनेवाले होनेसे जगद्धितैपी ८३४, लोकको जाननेसे लोकज्ञ ७३५, सव जगह व्याप्त होनेसे सर्वग ८३६ और जगत्मे सवसे ज्येप्ठ होनेके कारण जगदग्रज ८३७ कहलाते है ॥१९५॥ चर, स्थावर सभीके गुरु होनेसे चराचर-गुरु ८३८, वडी सावधानीके साथ हृदयमे सुरक्षित रखनेसे गोप्य ८३९, गूढ स्वरूपके धारक होनेसे गूढात्मा ८४०, अत्यन्त गूढ विपयोको जाननेसे गूढगोचर ८४१, तत्कालमे उत्पन्न हुएके समान निर्विकार होनेसे सद्योजात ८४२, प्रकाशस्वरूप होनेसे प्रकाशात्मा ८४३ और जलती हुई अग्निके समान शरीरकी प्रभाके धारक होनेसे ज्वलज्ज्वलनसप्रभ

---

१ सर्वलोकस्य एक एव नेता । २ प्रशस्त । ३ दीप्तकल्याणात्मा ल० । ४ सर्वेशो –द० । [illegible] ल०, द०, इ० । ५ गूढेन्द्रिय ।

आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः । सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥१९७॥
तपनीयनिभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनलप्रभः । सन्ध्याभ्र[1]बभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥१९८॥
निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः । हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥१९९॥
द्युम्नाभो [2]जातरूपाभस्तप्तजाम्बूनदद्युतिः । सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥२००॥
शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः । शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥२०१॥
शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः[3] शिवप्रदः । शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः ॥२०२॥
[4]श्रेयानिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः[5] । सुस्थिरः स्थावरः स्थास्नुः[6] प्रथीयान्[7]प्रथितः पृथुः ॥२०३॥
इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ।

---

८४४ कहलाते है ॥१९६॥ सूर्यके समान तेजस्वी होनेसे आदित्यवर्ण ८४५, सुवर्णके समान कान्तिवाले होनेसे भर्माभ ८४६, उत्तमप्रभासे युक्त होनेके कारण सुप्रभ ८४७, सुवर्णके समान आभा होनेसे कनकप्रभ ८४८, सुवर्णवर्ण ८४९ और रुक्माभ ८५० तथा करोडो सूर्योके समान देदीप्यमान प्रभाके धारक होनेसे सूर्यकोटिसमप्रभ ८५१ कहे जाते है ॥१९७॥ सुवर्णके समान भास्वर होनेसे तपनीयनिभ ८५२, ऊंचा शरीर होनेसे तुङ्ग ८५३, प्रातःकालके सूर्यके समान बालप्रभाके धारक होनेसे बालार्काभ ८५४, अग्निके समान कान्तिवाले होनेसे अनलप्रभ ८५५, सध्याकालके बादलोके समान सुन्दर होनेसे सन्ध्याभ्रबभ्रु ८५६, सुवर्णके समान आभावाले होनेसे हेमाभ ८५७ और तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभासे युक्त होनेके कारण तप्तचामीकरप्रभ ८५८ कहलाते है ॥१९८॥ अत्यन्त तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिवाले होनेसे निष्टप्तकनकच्छाय ८५९, देदीप्यमान सुवर्णके समान उज्ज्वल होनेसे कनत्काञ्चनसन्निभ ८६० तथा सुवर्णके समान वर्ण होनेसे हिरण्यवर्ण ८६१, स्वर्णाभ ८६२, शातकुम्भनिभप्रभ ८६३, द्युम्नाभ ८६४, जातरूपाभ ८६५, तप्तजाम्बूनदद्युति ८६६, सुधौतकलधौतश्री ८६७ और हाटकद्युति ८६८ तथा देदीप्यमान होनेसे प्रदीप्त ८६९ कहलाते है ॥१९९–२००॥ शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषोके इष्ट होनेसे शिष्टेष्ट ८७०, पुष्टिको देनेवाले होनेसे पुष्टिद ८७१, बलवान् होनेसे अथवा लाभान्तराय कर्मके क्षयसे प्रत्येक समय प्राप्त होनेवाले अनन्त शुभ पुद्गलवर्गणाओसे परमौदारिक शरीरके पुष्ट होनेसे पुष्ट ८७२, प्रकट दिखाई देनेसे स्पष्ट ८७३, स्पष्ट अक्षर होनेसे स्पष्टाक्षर ८७४, समर्थ होनेसे क्षम ८७५, कर्मरूप शत्रुओको नाश करनेसे शत्रुघ्न ८७६, शत्रु रहित होनेसे अप्रतिघ ८७७, सफल होनेसे अमोघ ८७८, उत्तम उपदेशक होनेसे प्रशास्ता ८७९, रक्षक होनेसे शासिता ८८० और अपने आप उत्पन्न होनेसे स्वभू ८८१ कहलाते है ॥२०१॥ शान्त होनेसे शान्तिनिष्ठ ८८२, मुनियोमे श्रेष्ठ होनेसे मुनिज्येष्ठ ८८३, कल्याण परम्पराके प्राप्त होनेसे शिवताति ८८४, कल्याण अथवा मोक्ष प्रदान करनेसे शिवप्रद ८८५, शान्तिको देनेवाले होनेसे शान्तिद ८८६, शान्तिके कर्ता होनेसे शान्तिकृत् ८८७, शान्तस्वरूप होनेसे शान्ति ८८८, कान्तियुक्त होनेसे कान्तिमान् ८८९ और इच्छित पदार्थ प्रदान करनेसे कामितप्रद ८९० कहलाते है ॥२०२॥ कल्याणके भण्डार होनेसे श्रेयोनिधि ८९१, धर्मके आधार होनेसे अधिष्ठान ८९२, अन्यकृत प्रतिष्ठासे रहित होनेके कारण अप्रतिष्ठ ८९३, प्रतिष्ठा अर्थात् कीर्तिसे युक्त होनेके कारण प्रतिष्ठित ८९४, अतिशय स्थिर होनेसे सुस्थिर ८९५, विहार रहित होनेसे स्थावर ८९६, अचल होनेसे स्थाणु ८९७,

---

१ सन्ध्याकालमेघवत् पिङ्गलः । २ कनकप्रभा । ३ सुखपरम्पर । ४ श्रेयोनिधि अ०, ल०, स० । ५ स्थैर्यवान् । ६ सुस्थितः द०, ल०, अ०, प०, इ० । स्थाणुः ल०, अ० । ७ –अतिशयेन पृथुः ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बर.। निष्किञ्चनो निराशंसो[1] ज्ञानचक्षुरमो[2]मुह ॥२०४॥
तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धि. शीलसागर । तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपह[3] ॥२०५॥
जगच्चूडामणिर्दीप्त शवा[4]न्विघ्नविनायक[5]। कलिघ्न[6] कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशक ॥२०६॥
अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूक.[7] प्रमामय[8]। लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराज. प्रजाहित. ॥२०७॥
मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथ । प्रशान्तरसशैलूषो[9] भव्यपेटक[10]नायक ॥२०८॥
मूलकर्ताखि[11]लज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणम्। आप्तो वागीश्वर श्रेयान् श्रायसोक्ति[12]निरुक्तवाक् ॥२०९॥

अत्यन्त विस्तृत होनेसे प्रथीयान् ८९८, प्रसिद्ध होनेसे प्रथित ८९९ और ज्ञानादि गुणोकी अपेक्षा महान् होनेसे पृथु ९०० कहलाते है ॥२०३॥

दिशारूप वस्त्रोको धारण करने–दिगम्बर रहनेसे दिग्वासा ९०१, वायुरूपी करधनीको धारण करनेसे वातरशन ९०२, निर्ग्रन्थ मुनियोके स्वामी होनेसे निर्ग्रन्थेश ९०३, वस्त्र रहित होनेसे निरम्बर ९०४, परिग्रह रहित होनेसे निष्किञ्चन ९०५. इच्छा रहित होनेसे निराशस ९०६, ज्ञानरूपी नेत्रके धारक होनेसे ज्ञानचक्षु ९०७ और मोहसे रहित होनेके कारण अमोमुह ९०८ कहलाते है ॥२०४॥ तेजके समूह होनेसे तेजोराशि ९०९, अनन्त प्रतापके धारक होनेसे अनन्तौज ९१०, ज्ञानके समुद्र होनेसे ज्ञानाब्धि ९११, शीलके समुद्र होनेसे शीलसागर ९१२, तेज स्वरूप होनेसे तेजोमय ९१३, अपरिमित ज्योतिके धारक होनेसे अमितज्योति ९१४, भास्वर शरीर होनेसे ज्योतिर्मूर्ति ९१५ और अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट करनेवाले होनेसे तमोऽपह ९१६ कहलाते हैं ॥२०५॥ तीनो लोकोमे मस्तकके रत्नके समान अतिशय श्रेष्ठ होनेसे जगच्चूडामणि ९१७, देदीप्यमान होनेसे दीप्त ९१८, सुखी अथवा शान्त होनेसे शवान् ९१९, विघ्नोके नाशक होनेसे विघ्नविनायक ९२०, कलह अथवा पापोको नष्ट करनेसे कलिघ्न ९२१, कर्मरूप शत्रुओके घातक होनेसे कर्मशत्रुघ्न ९२२ और लोक तथा अलोकको प्रकाशित करनेसे लोकालोकप्रकाशक ९२३ कहलाते है ॥२०६॥ निद्रा रहित होनेसे अनिद्रालु ९२४, तन्द्रा-आलस्य रहित होनेसे अतन्द्रालु ९२५, सदा जागृत रहनेसे जागरूक ९२६, ज्ञानमय रहनेसे प्रमामय ९२७, अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीके स्वामी होनेसे लक्ष्मीपति ९२८, जगत् को प्रकाशित करनेसे जगज्ज्योति ९२९, अहिसा धर्मके राजा होनेसे धर्मराज ९३० और प्रजाके हितैषी होनेसे प्रजाहित ९३१ कहलाते है ॥२०७॥ मोक्षके इच्छुक होनेसे मुमुक्षु ९३२, बन्ध और मोक्षका स्वरूप जाननेसे बन्धमोक्षज्ञ ९३३, इन्द्रियोको जीतनेसे जिताक्ष ९३४, कामको जीतनेसे जितमन्मथ ९३५, अत्यन्त शान्तरूपी रसको प्रदर्शित करनेके लिये नटके समान होनेसे प्रशान्तरसशैलूष ९३६ और भव्यसमूहके स्वामी होनेसे भव्यपेटकनायक ९३७ कहलाते है ॥२०८॥ धर्मके आद्यवक्ता होनेसे मूलकर्ता ९३८, समस्त पदार्थोको प्रकाशित करनेसे अखिलज्योति ९३९, कर्ममलको नष्ट करनेसे मलघ्न ९४०, मोक्षमार्गके मुख्य कारण होनेसे मूलकारण ९४१, यथार्थवक्ता होनेसे आप्त ९४२, वचनोके स्वामी होनेसे वागीश्वर ९४३, कल्याणस्वरूप होनेसे श्रेयान् ९४४, कल्याणरूप वाणीके होनेसे श्रायसोक्ति ९४५ और सार्थकवचन होनेसे निरुक्तवाक् ९४६ कहलाते है ॥२०९॥

---

१ निराश । २ [illegible] निर्मोह । ३ आदित्य. । ४ [illegible] । ५ [illegible] । ६ दीपघ्न । ७ जागरणशील । ८ ज्ञानमय । ९ [illegible] । १० [illegible] । ११ [illegible]ज्योति. । १२ प्रशस्तवाक् ।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् । सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥२१०॥
श्रीश. श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्कर । उत्सन्न[1]दोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सल ॥२११॥
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधी. । धीरधीर्बुद्धसन्मार्ग. शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥२१२॥
प्रज्ञापारमित. प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रिय. । भदन्तो[2] भद्रकृ[3]द्भद्र.[4] कल्पवृक्षो वरप्रद ॥२१३॥
समुन्मीलितकर्मारि कर्मकाष्ठाशु[5]शुक्षणिः । कर्मण्यः[6] कर्मठ[7] प्राशु[8]र्हेयादेयविचक्षण ॥२१४॥
अनन्तशक्तिरच्छेद्यः त्रिपुरारि[9]स्त्रिलोचन.[10] । त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्ष केवलज्ञानवीक्षण ॥२१५॥

श्रेष्ठ वक्ता होनेसे प्रवक्ता ९४७, वचनोके स्वामी होनेसे वचसामीश ९४८, कामदेवको जीतनेके कारण मारजित् ९४९, ससारके समस्त पदार्थोको जाननेसे विश्वभाववित् ९५०, उत्तम शरीरसे युक्त होनेके कारण सुतनु ९५१, शीघ्र ही शरीर बन्धनसे रहित हो मोक्षकी प्राप्ति होनेसे तनुनिर्मुक्त ९५२, प्रशस्त विहायोगति नामकर्मके उदयसे आकाशमे उत्तम गमन करने, आत्मस्वरूपमे तल्लीन होने अथवा उत्तमज्ञानमय होनेसे सुगत ९५३ और मिथ्यानयोको नष्ट करनेसे हतदुर्नय ९५४ कहलाते है ॥२१०॥ लक्ष्मीके ईश्वर होनेसे श्रीश ९५५ कहलाते है, लक्ष्मी आपके चरण कमलोकी सेवा करती है इसलिये श्रीश्रित-पादाब्ज ९५६ कहे जाते है, भयरहित है इसलिये वीतभी ९५७ कहलाते है, दूसरोका भय नष्ट करनेवाले है इसलिये अभयकर ९५८ माने जाते है, समस्त दोपोको नष्ट कर दिया है इसलिये उत्सन्नदोष ९५९ कहलाते है, विघ्न रहित होनेसे निर्विघ्न ९६०, स्थिर होनेसे निश्चल ९६१ और लोगोके स्नेहपात्र होनेसे लोक-वत्सल ९६२ कहलाते है ॥ २११ ॥ समस्त लोगोमे उत्कृष्ट होनेसे लोकोत्तर ९६३, तीनो लोकोके स्वामी होनेसे लोकपति ९६४, समस्त पुरुपोके नेत्रस्वरूप होनेसे लोकचक्षु ९६५, अपरिमित बुद्धिके धारक होनेसे अपारधी ९६६, सदा स्थिर बुद्धिके धारक होनेसे धीरधी ९६७, समीचीन मार्गको जान लेनेसे बुद्धसन्मार्ग ९६८, कर्ममलसे रहित होनेके कारण शुद्ध ९६९ और सत्य तथा पवित्र वचन बोलनेसे सत्यसूनृतवाक् ९७० कहलाते है ॥२१२॥ बुद्धिकी पराकाष्ठाको प्राप्त होनेसे प्रज्ञापारमित ९७१, अतिशय बुद्धिमान् होनेसे प्राज्ञ ९७२, विषय कषायोसे उपरत होनेके कारण यति ९७३, इन्द्रियोको वश करनेसे नियमितेन्द्रिय ९७४, पूज्य होनेसे भदत ९७५, सब जीवोका भला करनेसे भद्रकृत् ९७६, कल्याणरूप होनेसे भद्र ९७७, मनचाही वस्तुओका दाता होनेसे कल्पवृक्ष ९७८ और इच्छित वर प्रदान करनेसे वरप्रद ९७९ कहलाते है ॥२१३॥ कर्मरूप शत्रुओको उखाड देनेसे समुन्मूलितकर्मारि ९८०, कर्मरूप ईधनको जलानेके लिये अग्निके समान होनेसे कर्मकाष्ठाशुशुक्षणि ९८१, कार्य करनेमे निपुण होनेसे कर्मण्य ९८२, समर्थ होनेसे कर्मठ ९८३, उत्कृष्ट अथवा उन्नत होनेसे प्राशु ९८४ और छोडने तथा ग्रहण करने योग्य पदार्थोके जाननेमे विद्वान् होनेसे हेयादेयविचक्षण ९८५ कहलाते है ॥२१४॥ अनन्त-शक्तियोके धारक होनेसे अनन्तशक्ति ९८६, किसीके द्वारा छिन्न-भिन्न करने योग्य न होनेसे अच्छेद्य ९८७, जन्म जरा और मरण इन तीनोका नाश करनेसे त्रिपुरारि ९८८, त्रिकालवर्ती पदार्थोके जाननेसे त्रिलोचन ९८९, त्रिनेत्र ९९०, त्र्यम्बक ९९१ और त्र्यक्ष ९९२ तथा केवलज्ञानरूप नेत्रसे सहित होनेके कारण केवलज्ञानवीक्षण ९९३ कहलाते

१ निरस्तदोषः । २ पूज्य. । ३ सुखकरः । ४ शोभनः । ५ कर्मेन्धनकृशानुः । ६ कर्मणि साधु । ७ कर्मशूर । ८ उन्नत. । ९ जन्मजरामरणत्रिपुरहरः । १० त्रिकालविषयावबोधात् त्रिलोचनः ।

समन्तभद्र:[1] शान्तारिः धर्माचार्यो दयानिधिः । सूक्ष्मदर्शी जितानङ्ग: कृपालुर्धर्मदेशकः ॥२१६॥
शुभयु:[2] सुखसाद्भूत:[3] पुण्यराशि[4]रनामय: । धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायक: ॥२१७॥
इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ।

धाम्ना पते तवामूनि नामान्यागमकोविदै: । समुच्चितान्यनुध्यायन् पुमान् [5]पूतस्मृतिर्भवेत् ॥२१८॥
गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मत: । स्तोता तथाप्यसन्दिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत् ॥२१९॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धु: त्वमतोऽसि जगद्भिषक् । त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धित: ॥२२०॥
त्वमेकं जगतां ज्योति: त्वं [6]द्विरूपोपयोगभाक् । त्वं [7]त्रिरूपैकमुक्त्यङ्ग: स्वोत्थानन्तचतुष्टय: ॥२२१॥
त्वं [8]पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायक: । [9]षड्भेदभावतत्त्वज्ञ: त्वं सप्तनयसङ्ग्रह: ॥२२२॥
[10]दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिक: । दशावतार[11]निर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ॥२२३॥
युष्मन्नामावलीदृब्ध[12]विलसत्स्तोत्रमालया । भवन्तं परिवस्याम[13] प्रसीदानुगृहाण नः ॥२२४॥

हैं ॥२१५॥ सब ओरसे मंगलरूप होनेके कारण समन्तभद्र ९९४, कर्मरूप शत्रुओंके शान्त हो जानेसे शान्तारि ९९५, धर्मके व्यवस्थापक होनेसे धर्माचार्य ९९६, दयाके भण्डार होनेसे दयानिधि ९९७, सूक्ष्म पदार्थोंको भी देखनेसे सूक्ष्मदर्शी ९९८, कामदेवको जीत लेनेसे जितानङ्ग ९९९, कृपायुक्त होनेसे कृपालु १०००, और धर्मके उपदेशक होनेसे धर्मदेशक १००१ कहलाते हैं ॥२१६॥ शुभ युक्त होनेसे शुभयु १००२, सुखके आधीन होनेसे सुखसाद्भूत १००३, पुण्यके समूह होनेसे पुण्यराशि १००४, रोग रहित होनेसे अनामय १००५, धर्मकी रक्षा करनेसे धर्मपाल १००६, जगत्‌की रक्षा करनेसे जगत्पाल १००७ और धर्मरूपी साम्राज्यके स्वामी होनेसे धर्मसाम्राज्यनायक १००८ कहलाते हैं ॥२१७॥

हे तेजके अधिपति जिनेन्द्रदेव, आगमके ज्ञाता विद्वानोंने आपके ये एक हजार आठ नाम संचित किये हैं, जो पुरुष आपके इन नामोंका ध्यान करता है उसकी स्मरणशक्ति अत्यन्त पवित्र हो जाती है ॥२१८॥ हे प्रभो, यद्यपि आप इन नामसूचक वचनोंके गोचर हैं तथापि वचनोंके अगोचर ही माने गये हैं यह सब कुछ है परन्तु स्तुति करनेवाला आपसे निःसन्देह अभीष्ट फलको पा लेता है ॥२१९॥ इसलिये हे भगवन्, आप ही इस जगत्‌के बन्धु हैं, आप ही जगत्‌के वैद्य हैं, आप ही जगत्‌का पोषण करनेवाले हैं और आप ही जगत्‌का हित करनेवाले हैं ॥२२०॥ हे नाथ, जगत्‌को प्रकाशित करनेवाले आप एक ही हैं। ज्ञान तथा दर्शन इस प्रकार द्विविध उपयोगके धारक होनेसे दो रूप हैं, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इस प्रकार त्रिविध मोक्षमार्गमय होनेसे तीन रूप हैं, अपने आप में उत्पन्न हुए अनन्तचतुष्टयरूप होनेसे चार रूप हैं ॥२२१॥ पंच परमेष्ठी स्वरूप होने अथवा गर्भादि पंच कल्याणकोंके नायक होनेसे पांच रूप हैं, जीव-पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंके ज्ञाता होनेसे छह रूप हैं, नैगम आदि सात नयोंके संग्रहस्वरूप होने से सात रूप हैं, सम्यक्त्व आदि आठ अलौकिक गुणरूप होनेसे आठ रूप हैं, नौ केवललब्धियोंसे सहित होनेके कारण नव रूप हैं और महाबल आदि दश अवतारोंसे आपका निर्धार होता है इसलिये दश रूप हैं इस प्रकार हे परमेश्वर, संसारके दुःखोंसे मेरी रक्षा कीजिये ॥२२२–२२३॥ हे भगवन् हम

१ समन्तात् मङ्गल: । २ शुभं युनक्तीति । ३ सुखाधीन: । ४ पुण्यराशिर्निरामय: । ५ [illegible] । ६ ज्ञानदर्शनोपयोग: । ७ रत्नत्रयस्वरूप: । ८ पञ्चपरमेष्ठिस्वरूप: । ९ षड्द्रव्य-[illegible] । १० सम्यक्त्वाद्यष्टगुणमूर्ति: । अथवा पृथिव्याद्यष्टगुणमूर्ति: । ११ महाबलादि[illegible]-[illegible]निर्धार: । १२ रचित । १३ आराधयाम: ।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् । सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥२१०॥
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्करः । उत्सन्न[1]दोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥२११॥
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः । धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥२१२॥
प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः । भदन्तो[2] भद्रकृ[3]द्भद्रः[4] कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥२१३॥
समुन्मीलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशु[5]शुक्षणिः । कर्मण्यः[6] कर्मठः[7] प्राशु[8]र्हेयादेयविचक्षणः ॥२१४॥
अनन्तशक्तिरच्छेद्यः त्रिपुरारि[9]स्त्रिलोचनः[10] । त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥२१५॥

श्रेष्ठ वक्ता होनेसे प्रवक्ता ९४७, वचनोके स्वामी होनेसे वचसामीश ९४८, कामदेवको जीतनेके कारण मारजित् ९४९, ससारके समस्त पदार्थोको जाननेसे विश्वभाववित् ९५०, उत्तम शरीरसे युक्त होनेके कारण सुतनु ९५१, शीघ्र ही शरीर बन्धनसे रहित हो मोक्षकी प्राप्ति होनेसे तनुनिर्मुक्त ९५२, प्रशस्त विहायोगति नामकर्मके उदयमे आकाशमे उत्तम गमन करने, आत्मस्वरूपमे तल्लीन होने अथवा उत्तमज्ञानमय होनेसे सुगत ९५३ और मिथ्यानयोको नष्ट करनेसे हतदुर्नय ९५४ कहलाते है ॥२१०॥ लक्ष्मीके ईश्वर होनेसे श्रीश ९५५ कहलाते है, लक्ष्मी आपके चरण कमलोकी सेवा करती है इसलिये श्रीश्रित-पादाब्ज ९५६ कहे जाते है, भयरहित है इसलिये वीतभी ९५७ कहलाते है, दूसरोका भय नष्ट करनेवाले है इसलिये अभयकर ९५८ माने जाते है, समस्त दोषोको नष्ट कर दिया है इसलिये उत्सन्नदोष ९५९ कहलाते है, विघ्न रहित होनेसे निर्विघ्न ९६०, स्थिर होनेसे निश्चल ९६१ और लोगोके स्नेहपात्र होनेसे लोक-वत्सल ९६२ कहलाते है ॥ २११ ॥ समस्त लोगोमे उत्कृष्ट होनेसे लोकोत्तर ९६३, तीनो लोकोके स्वामी होनेसे लोकपति ९६४, समस्त पुरुषोके नेत्रस्वरूप होनेसे लोकचक्षु ९६५, अपरिमित बुद्धिके धारक होनेसे अपारधी ९६६, सदा स्थिर बुद्धिके धारक होनेसे धीरधी ९६७, समीचीन मार्गको जान लेनेसे बुद्धसन्मार्ग ९६८, कर्ममलसे रहित होनेके कारण शुद्ध ९६९ और सत्य तथा पवित्र वचन बोलनेसे सत्यसूनृतवाक् ९७० कहलाते है ॥२१२॥ बुद्धिकी पराकाष्ठाको प्राप्त होनेसे प्रज्ञापारमित ९७१, अतिशय बुद्धिमान् होनेसे प्राज्ञ ९७२, विषय कषायोसे उपरत होनेके कारण यति ९७३, इन्द्रियोको वश करनेसे नियमितेन्द्रिय ९७४, पूज्य होनेसे भदत ९७५, सब जीवोका भला करनेसे भद्रकृत् ९७६, कल्याणरूप होनेसे भद्र ९७७, मनचाही वस्तुओका दाता होनेसे कल्पवृक्ष ९७८ और इच्छित वर प्रदान करनेसे वरप्रद ९७९ कहलाते है ॥२१३॥ कर्मरूप शत्रुओको उखाड देनेसे समुन्मूलितकर्मारि ९८०, कर्मरूप ईधनको जलानेके लिये अग्निके समान होनेसे कर्मकाष्ठाशुशुक्षणि ९८१, कार्य करनेमे निपुण होनेसे कर्मण्य ९८२, समर्थ होनेसे कर्मठ ९८३, उत्कृष्ट अथवा उन्नत होनेसे प्राशु ९८४ और छोडने तथा ग्रहण करने योग्य पदार्थोके जाननेमे विद्वान् होनेसे हेयादेयविचक्षण ९८५ कहलाते है ॥२१४॥ अनन्त-शक्तियोके धारक होनेसे अनन्तशक्ति ९८६, किसीके द्वारा छिन्न-भिन्न करने योग्य न होनेसे अच्छेद्य ९८७, जन्म जरा और मरण इन तीनोका नाश करनेसे त्रिपुरारि ९८८, त्रिकालवर्ती पदार्थोके जाननेसे त्रिलोचन ९८९, त्रिनेत्र ९९०, त्र्यम्बक ९९१ और त्र्यक्ष ९९२ तथा केवलज्ञानरूप नेत्रसे सहित होनेके कारण केवलज्ञानवीक्षण ९९३ कहलाते

---

१ निरस्तदोषः । २ पूज्यः । ३ सुखकरः । ४ शोभनः । ५ कर्मेन्धनकृशानुः । ६ कर्मणि साधुः । ७ कर्मशूरः । ८ उन्नतः । ९ जन्मजरामरणत्रिपुरहरः । १० त्रिकालविषयावबोधात् त्रिलोचनः ।

समन्तभद्र.[1] शान्तारि: धर्माचार्यो दयानिधि: । सूक्ष्मदर्शी जितानङ्ग: कृपालुर्धर्मदेशक: ॥२१६॥
शुभयु.[2] सुखसाद्भूत:[3] पुण्यराशि[4]रनामय: । धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायक: ॥२१७॥
इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ।

धाम्नां पते तवामूनि नामान्यागमकोविदै: । समुच्चितान्यनुध्यायन् पुमान् [5]पूतस्मृतिर्भवेत् ॥२१८॥
गोचरोऽपि गिरामासा त्वमवाग्गोचरो मत. । स्तोता तथाप्यसन्दिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत् ॥२१९॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुः त्वमतोऽसि जगद्भिषक् । त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धित: ॥२२०॥
त्वमेक जगता ज्योति त्वं [6]द्विरूपोपयोगभाक् । त्व [7]त्रिरूपैकमुक्त्यङ्ग: स्वोत्थानन्तचतुष्टय. ॥२२१॥
त्वं [8]पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायक: । [9]षड्भेदभावतत्त्वज्ञ त्वं सप्तनयसङ्ग्रह: ॥२२२॥
[10]दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्व नवकेवललब्धिक: । दशावतार[11]निर्धार्यो मा पाहि परमेश्वर ॥२२३॥
युष्मन्नामावलीदृब्ध[12]विलसत्स्तोत्रमालया । भवन्त परिवस्याम:[13] प्रसीदानुगृहाण न: ॥२२४॥

हैं ॥२१५॥ सब ओरसे मगलरूप होनेके कारण समन्तभद्र ९९४, कर्मरूप शत्रुओके शान्त हो जानेसे शान्तारि ९९५, धर्मके व्यवस्थापक होनेसे धर्माचार्य ९९६, दयाके भण्डार होनेसे दयानिधि ९९७, सूक्ष्म पदार्थोंको भी देखनेसे सूक्ष्मदर्शी ९९८, कामदेवको जीत लेनेसे जितानङ्ग ९९९, कृपायुक्त होनेसे कृपालु १०००, और धर्मके उपदेशक होनेसे धर्मदेशक १००१ कहलाते हैं ॥२१६॥ शुभ युक्त होनेसे शुभयु १००२, सुखके आधीन होनेसे सुखसाद्भूत १००३, पुण्यके समूह होनेसे पुण्यराशि १००४, रोग रहित होनेसे अनामय १००५, धर्मकी रक्षा करनेसे धर्मपाल १००६, जगत्‌की रक्षा करनेसे जगत्पाल १००७ और धर्मरूपी साम्राज्यके स्वामी होनेसे धर्मसाम्राज्यनायक १००८ कहलाते हैं ॥२१७॥

हे तेजके अधिपति जिनेन्द्रदेव, आगमके ज्ञाता विद्वानोंने आपके ये एक हजार आठ नाम सचित किये हैं, जो पुरुष आपके इन नामोका ध्यान करता है उसकी स्मरणशक्ति अत्यन्त पवित्र हो जाती है ॥२१८॥ हे प्रभो, यद्यपि आप इन नामसूचक वचनोके गोचर हैं तथापि वचनोके अगोचर ही माने गये हैं यह सब कुछ है परन्तु स्तुति करनेवाला आपसे नि सन्देह अभीष्ट फलको पा लेता हैं ॥२१९॥ इसलिये हे भगवन्, आप ही इस जगत्‌के बन्धु हैं, आप ही जगत् के वैद्य हैं, आप ही जगत्‌का पोषण करनेवाले हैं और आप ही जगत्‌का हित करनेवाले हैं ॥२२०॥ हे नाथ, जगत्‌को प्रकाशित करनेवाले आप एक ही है। ज्ञान तथा दर्शन इस प्रकार द्विविध उपयोगके धारक होनेसे दो रूप हैं, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इस प्रकार त्रिविध मोक्षमार्गमय होनेसे तीन रूप हैं, अपने आप मे उत्पन्न हुए अनन्तचतुष्टयरूप होनेसे चार रूप है ॥२२१॥ पच परमेष्ठी स्वरूप होने अथवा गर्भादि पच कल्याणकोके नायक होनेसे पाच रूप है, जीव-पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योके ज्ञाता होनेसे छह रूप हैं, नैगम आदि सात नयोके सग्रहस्वरूप होने से सात रूप हैं, सम्यक्त्व आदि आठ अलौकिक गुणरूप होनेसे आठ रूप हैं, नौ केवललब्धियोसे सहित होनेके कारण नव रूप हैं और महाबल आदि दश अवतारोसे आपका निर्धार होता है इसलिये दश रूप हैं इस प्रकार हे परमेश्वर, ससारके दु खोसे मेरी रक्षा कीजिये ॥२२२-२२३॥ हे भगवन्, हम

---

१ समन्तात् मङ्गल । २ शुभ युनक्तीति । ३ सुखाधीन: । ४ पुण्यराशिर्निरामय । ५ पवित्रज्ञानी । ६ ज्ञानदर्शनोपयोग । ७ रत्नत्रयस्वरूप । ८ पञ्चपरमेष्ठिस्वरूप: । ९ षड्द्रव्यस्वरूपज्ञ । १० सम्यक्त्वाद्यष्टगुणमूर्ति । अथवा पृथिव्याद्यष्टगुणमूर्ति. । ११ महाबलादिपुरुजिनपर्यन्तदशावतार । १२ रचित । १३ आराधयाम ।

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः । यः संपाठ पठत्येनं स स्यात् कल्याणभाजनम् ॥२२५॥
ततः सदेद पुण्यार्थी पुमान् पठतु पुण्यधी. । पौरुहूती श्रिय प्राप्तु परमामभिलाषुकः ॥२२६॥
स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम् । ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात् प्रस्तावनामिमाम्[1] ॥२२७॥
भगवन् भव्यसस्यानां [2]पापावग्रहशोषिणाम् । धर्मामृतप्रसेकेन त्वमेधि[3] शरण विभो ॥२२८॥
भव्यसार्थाधिपप्रोद्यद्दयाध्वजविराजित । धर्मचक्रमिद सज्जं त्वज्जयोद्योगसाधनम् ॥२२९॥
निर्धूय मोहपृतना मुक्तिमार्गोपरोधिनीम् । तवोपदेष्टुं सन्मार्गं कालोऽय समुपस्थितः ॥२३०॥
इति प्रबुद्धतत्त्वस्य स्वयं भर्तुर्जिगीषतः । पुनरुक्ततरा वाचः प्रादुरासन् शतक्रतोः ॥२३१॥
अथ त्रिभुवनक्षोभी तीर्थकृत् पुण्यसारथिः । भव्याब्जानुग्रहं कर्तुम् उत्तस्थे[4] जिनभानुमान् ॥२३२॥
मोक्षाधिरोहनिःश्रेणीभूतच्छत्रत्रयोद्धुरः[5] । यशः क्षीरोदफेनाभसितचामरवीजितः ॥२३३॥
ध्वनन्मधुरगम्भीरधीरदिव्यमहाध्वनिः । भानुकोटिप्रतिस्पर्धिप्रभावलयभास्वरः ॥२३४॥
[6]मरुत्प्रहतगम्भीरवंध्वनद्दुन्दुभिः प्रभुः । सुरोत्करकरोन्मुक्तपुष्पवर्षार्चितक्रमः ॥२३५॥

लोग आपकी नामावलीसे बने हुए स्तोत्रोकी मालासे आपकी पूजा करते है, आप प्रसन्न होइए, और हम सबको अनुगृहीत कीजिये ॥२२४॥ भक्त लोग इस स्तोत्रका स्मरण करने मात्रसे ही पवित्र हो जाते है और जो इस पुण्य पाठका पाठ करते हैं वे कल्याणके पात्र होते है ॥२२५॥ इसलिये जो बुद्धिमान् पुरुष पुण्यकी इच्छा रखते है अथवा इन्द्रकी परम विभूति प्राप्त करना चाहते है वे सदा ही इस स्तोत्रका पाठ करे ॥२२६॥ इस प्रकार इन्द्रने चर और अचर जगत्के गुरु भगवान् वृषभदेवकी स्तुति कर फिर तीर्थं विहारके लिये नीचे लिखी हुई प्रार्थना की ॥२२७॥ हे भगवन्, भव्य जीवरूपी धान्य पापरूपी अनावृष्टिसे सूख रहे है सो हे विभो, उन्हे धर्मरूपी अमृतसे सीचकर उनके लिये आप ही शरण होइए ॥२२८॥ हे भव्य जीवोके समूहके स्वामी, हे फहराती हुई दयारूपी ध्वजासे सुशोभित, जिनेन्द्रदेव, आपकी विजयके उद्योगको सिद्ध करनेवाला यह धर्मचक्र तैयार है ॥२२९॥ हे भगवन्, मोक्षमार्गको रोकनेवाली मोहकी सेनाको नष्ट कर चुकनेके बाद अब आपका यह समीचीन मोक्षमार्गके उपदेश देनेका समय प्राप्त हुआ है ॥२३०॥ इस प्रकार जिन्होने समस्त तत्त्वोका स्वरूप जान लिया है और जो स्वय ही विहार करना चाहते है ऐसे भगवान् वृषभदेवके सामने इन्द्रके वचन पुनरुक्त हुए से प्रकट हुए थे । भावार्थ–उस समय भगवान् स्वय ही विहार करनेके लिये तत्पर थे इसलिये इन्द्र द्वारा की हुई प्रार्थना व्यर्थ सी मालूम होती थी ॥२३१॥

अथानन्तर–जो तीनो लोकोमे क्षोभ उत्पन्न करनेवाले है और तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति ही जिनका सारथि–सहायक है ऐसे जिनेद्रदेवरूपी सूर्य भव्य जीवरूपी कमलोका अनुग्रह करनेके लिये तैयार हुए ॥२३२॥ जो मोक्षरूपी महलपर चढनेके लिये सीढियोके समान छत्रत्रयसे सुशोभित हो रहे है, जिनपर क्षीर समुद्रके फेनके समान सुशोभित चमर ढोले जा रहे है, मधुर, गभीर, धीर तथा दिव्य महाध्वनिसे जिनका शरीर शब्दायमान हो रहा है, जो करोडो सूर्योसे स्पर्धा करनेवाले भामण्डलसे देदीप्यमान हो रहे है, जिनके समीप ही देवताओके द्वारा वजाये हुए दुन्दुभि गभीर शव्द कर रहे है, जो स्वामी है, देव-समूहके हाथोसे छोडी हुई पुष्पवर्षासे जिनके चरण कमलोकी पूजा हो रही है, जो मेरु पर्वतकी शिखरके समान अतिशय ऊँचे सिंहासनके स्वामी है, छाया और फल सहित अशोकवृक्षसे

---

१ अवसरम् । २ अनावृष्ट्या इत्यर्थ । 'वृष्टिवर्ष तद्विघातेव ग्रहावग्रहौ समौ' इत्यमर । ३ 'अस भुवि' । भव । ४ उदोनूर्ध्वेहीतीति तङ, उद्युक्तोऽभूत् । ५ उत्कट । ६ सुरताड्यमान ।

मेरुशृङ्गसमुत्तुङ्गसिंहविष्टरनायकः । सच्छायसफलाशोकप्रकटीकृतचेष्टितः ॥२३६॥
धूलिसालवृतास्थानजगतीपरिमण्डल. । मानस्तम्भनिरुद्धान्यकुदृष्टिमदविभ्रमः ॥२३७॥
स्वच्छाम्भ.खातिकाभ्यर्ण[1]व्रततीवनवेष्टिताम् । सभाभूमिमलङ्कुर्वन् अपूर्वविभवोदयाम् ॥२३८॥
समग्रगोपुरोदग्रैः प्राकारवलयैस्त्रिभिः । परार्ध्यरचनोपेतैः आविष्कृतमहोदय. ॥२३९॥
अशोकादिवनश्रेणीकृतच्छायसभावनिः । स्रग्वस्त्रादिध्वजोल्लाससमाहूतजगज्जनः ॥२४०॥
[2]कल्पद्रुमवनच्छायाविश्रान्तामरपूजितः । प्रासादरुद्धभूमिष्ठकिन्नरोद्गीतसद्यशाः ॥२४१॥
ज्वलन्महोदयस्तूपप्रकटीकृतवैभव. । नाट्यशालाद्वयेद्धर्द्धिसवर्धितजनोत्सवः ॥२४२॥
धूपामोदितदिग्भागमहागन्धकुटीश्वर. । त्रिविष्टप[3]पतिप्राज्यपूजार्हः परमेश्वरः ॥२४३॥
त्रिजगद्वल्लभ श्रीमान् भगवानादिपूरुषः । प्रचक्रे विजयोद्योग धर्मचक्राधिनायकः २४४॥
ततो भगवदुद्योगसमये समुपेयुषि । प्रचेलुः प्रचलन्मौलिकोटयः सुरकोटयः ॥२४५॥
तदा सम्भ्रान्तनाकीन्द्रतिरीटोच्चलिता ध्रुवम् । जगन्नीराजयामासुः मणयो दिग्जये विभोः ॥२४६॥
जयत्युच्चैर्गिरो देवाः प्रोर्णुवाना[4] नभोऽङ्गणम् । दिशा मुखानि तेजोभिर्द्योतयन्त. प्रतस्थिरे ॥२४७॥
जिनोद्योगमहावात्या[5]क्षुभिता देवनायकाः । चतुर्निकायाश्चत्वारो महाब्धय इवाभवन् ॥२४८॥
प्रतस्थे भगवानित्यम् अनुयातः सुरासुरैः । अनिच्छापूर्विकां वृत्तिम् आस्कन्दन्भानुमानिव ॥२४९॥

जिनकी शान्त चेष्टाए प्रकट हो रही है, जिनके समवसरणकी पृथिवीका घेरा धूली-साल नामक कोटसे घिरा हुआ है, जिन्होने मानस्तम्भोके द्वारा अन्य मिथ्यादृष्टियोके अहकार तथा सन्देहको नष्ट कर दिया है, जो स्वच्छ जलसे भरी हुई परिखाके समीपवर्ती लतावनोसे घिरी हुई और अपूर्व वैभवसे सम्पन्न सभाभूमिको अलकृत कर रहे है, समस्त गोपुरद्वारोसे उन्नत और उत्कृष्ट रचनासे सहित तीन कोटोसे जिनका बडा भारी माहात्म्य प्रकट हो रहा है, जिनकी सभाभूमिमे अशोकादि वनसमूहसे सघन छाया हो रही है, जो माला वस्त्र आदिसे चिह्नित ध्वजाओकी फडकनसे जगत्के समस्त जीवोको बुलाते हुए से जान पडते है, कल्प-वृक्षोके वनकी छायामे विश्राम करनेवाले देव लोग सदा जिनकी पूजा किया करते है, वडे बडे महलोसे घिरी हुई भूमिमे स्थित किन्नरदेव जोर जोरसे जिनका यश गा रहे है, प्रकाशमान और बडी भारी विभूतिको धारण करनेवाले स्तूपोसे जिनका वैभव प्रकट हो रहा है, दोनो नाट्यशालाओकी बढी हुई ऋद्धियोसे जो मनुष्योका उत्सव बढा रहे है, जो धूपकी सुगन्धिसे दशो दिशाओको सुगन्धित करनेवाली बडी भारी गन्धकुटीके स्वामी है, जो इन्द्रोके द्वारा की हुई वडी भारी पूजाके योग्य है, तीनो जगत्के स्वामी है और धर्मके अधिपति है ऐसे श्रीमान् आदिपुरुष भगवान् वृषभदेवने विजय करनेका उद्योग किया—विहार करना प्रारम्भ किया ॥२३३–२४४॥ तदनन्तर भगवान्के विहारका समय आनेपर जिनके मुकुटोके अग्रभाग हिल रहे है ऐसे करोडो देव लोग इधर उधर चलने लगे ॥२४५ भगवान्के उस दिग्विजयके समय घबडाये हुए इन्द्रोके मुकुटोसे विचलित हुए मणि ऐसे जान पडते थे मानो जगत्की आरती ही कर रहे हो ॥२४६॥ उस समय जय जय इस प्रकार जोर जोरसे शब्द करते हुए, आकाशरूपी आगनको व्याप्त करते हुए और अपने तेजसे दिशाओके मुखको प्रकाशित करते हुए देव लोग चल रहे थे ॥२४७॥ उस समय इन्द्रो सहित चारो निकायके देव जिनेन्द्र भगवान्के विहाररूपी महावायुसे क्षोभको प्राप्त हुए चार महासागरके समान जान पडते थे ॥२४८॥ इस प्रकार सुर और असुरोसे सहित भगवान्ने सूर्यके समान इच्छा रहित वृत्तिको धारण

---

१ लतावन । २ वृक्ष–ल० । ३ इन्द्रादिकृतादभ्रः । ४ आच्छादयन्तः । ५ महावायुसमूहः ।

अर्धमागधिकाकारभाषापरिण[1]ताखिल[2]: । त्रिजगज्जनतामैत्रीसम्पादितगुणाद्भुतः ॥२५०॥
स्वसन्निधानसम्फुल्लफलिताङकुरितद्रुमः । आदर्शमण्डलाकारपरि[2]वर्तितभूतल. ॥२५१॥
सुगन्धिशिशिरानुच्चै[3]रनुयायिसमीरणः । [4]अकस्माज्जनतानन्दसम्पादिपरमोदय ॥२५२॥
मरुत्कुमार[5]सम्मृष्टयोजनान्तररम्यभू: । [6]स्तनितामरससिक्तगन्धाम्बुविरजोवनि ॥२५३॥
मृदुस्पर्शसुखाम्भोजविन्यस्तपदपङ्कजः । शालिव्रीह्यादिसम्पन्नवसुधासूचितागम. ॥२५४॥
[7]शरत्सरोवरस्पर्धिव्योमोदाहृत[8]सन्निधि. । ककुबन्तरवैमल्यसन्दर्शितसमागम ॥२५५॥
द्युस[9]त्परस्पराह्वानध्वानरुद्धहरिन्मुख[10] । सहस्रारस्फुरद्धर्मचक्ररत्नपुर सर: ॥२५६॥
पुरस्कृताष्टमा[11]ङ्गल्यध्वजमालाततताम्बर. । सुरासुरानुयातोऽभूद्[12] विजिहो[13]र्युस्तदा विभु ॥२५७॥
तदा मधुरगम्भीरो जजृम्भे दुन्दुभिध्वनि: । नभ: समन्तादापूर्य क्षुभ्यदब्धिस्वनोपम ॥२५८॥
ववृषु: सुमनोवृष्टिम् आपूरितनभोङ्गणम् । सुरा भव्यद्विरेफाणा सौमनस्य[14]विधायिनीम् ॥२५९॥
समन्ततः स्फुरन्ति स्म पालिके[15]तनकोटय. । आह्वातुमिव भव्यौघान् एतैतेति[16] मरुद्धताः ॥२६०॥

कर प्रस्थान किया ॥२४९॥ जिन्होने अर्धमागधी भाषामे जगत्के समस्त जीवोको कल्याणका उपदेश दिया था जो तीनो जगत्के लोगोमे मित्रता कराने रूप गुणोसे सबको आश्चर्यमे डालते है, जिन्होने अपनी समीपतासे वृक्षोको फूल फल और अकुरोसे व्याप्त कर दिया है, जिन्होने पृथिवीमण्डलको दर्पणके आकारमे परिवर्तित कर दिया है, जिनके साथ सुगन्धित शीतल तथा मन्द मन्द वायु चल रही है, जो अपने उत्कृष्ट वैभवसे अकस्मात् ही जन-समुदायको आनन्द पहुँचा रहे है, जिनके ठहरनेके स्थानसे एक योजन तककी भूमिको पवनकुमार जातिके देव झाड-बुहारकर अत्यन्त सुन्दर रखते है, जिनके विहारयोग्य भूमिको मेघकुमार जातिके देव सुगन्धित जलकी वर्षा कर धूलि-रहित कर देते है, जो कोमल स्पर्शसे सुख देनेके लिये कमलोपर अपने चरण-कमल रखते है, शालि व्रीहि आदिसे सपन्न अवस्थाको प्राप्त हुई पृथिवी जिनके आगमनकी सूचना देती है, शरदृतुके सरोवरके साथ स्पर्धा करनेवाला आकाश जिनके समीप आनेकी सूचना दे रहा है, दिशाओके अन्तरालकी निर्मलतासे जिनके समागमकी सूचना प्राप्त हो रही है, देवोके परस्पर–एक दूसरेको बुलानेके लिए प्रयुक्त हुए शब्दोसे जिन्होने दिशाओके मुख व्याप्त कर दिये है, जिनके आगे हजार अरवाला देदीप्यमान धर्मचक्र चल रहा है, जिनके आगे आगे चलते हुए अष्ट मगल-द्रव्य तथा आगे आगे फहराती हुई ध्वजाओके समूहसे आकाश व्याप्त हो रहा है और जिनके पीछे अनेक सुर तथा असुर चल रहे है ऐसे विहार करनेके इच्छुक भगवान् उस समय बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२५०–२५७॥ उस समय क्षुब्ध होते हुए समुद्रकी गर्जनाके समान आकाशको चारो ओरसे व्याप्त कर दुन्दुभि बाजोका मधुर तथा गभीर शब्द हो रहा था ॥२५८॥ देव लोग भव्य जीवरूपी भ्रमरोको आनन्द करनेवाली तथा आकाशरूपी आगनको पूर्ण भरती हुई पुष्पोकी वर्षा कर रहे थे ॥२५९॥ जिनके वस्त्र वायुसे हिल रहे है ऐसी करोडो ध्वजाए चारो ओर फहरा रही थी और वे ऐसी जान पडती थी मानो 'इधर आओ इधर आओ' इस प्रकार भव्य जीवोके समूहको बुला ही रही हो

---

१ परिणमितसर्वजीव. । २ परिणमित । ३ मन्द मन्दम् । ४ कारणमन्तरेण । ५ वायुकुमारसम्मार्जित । ६ मेघकुमार । ७ शरत्कालसरोवर । ८ उदाहरणीकृतसन्निधि. । ९ अमर । १० दिङमुख: । ११ अष्टमङ्गल । १२ –यातोऽभाद्-ब०, प०, अ०, स०, द०, इ०, ल० । १३ विहर्तुमिच्छ । १४ प्रसन्नचित्तवृत्तिम् । १५ ध्वज । १६ आगच्छताऽऽगच्छतेति ।

तर्जयन्निव कर्मारीन् ऊर्जस्वी रुद्धदिङ्मुखः। ढङ्कार एष ढक्कानाम् अभूत्प्रतिपदं विभोः २६१॥
नभोऽङ्गे नटन्ति स्म प्रोल्लसद्भ्रूपताकिकाः। सुराङ्गना विलिम्पत्यः स्वदेहप्रभया दिशः॥२६२॥
विवुधा पेठुरुत्साहात् किन्नरा मधुरं जगुः। वीणावादनमातेनुर्गन्धर्वाः सहखेचरैः॥२६३॥
प्रभामयमिवाशेष जगत्कर्तुं समुद्यताः। प्रतस्थिरे सुराधीशा ज्वलन्मुकुटकोटयः॥२६४॥
दिश प्रसेदुरुन्मुक्तधूलिका:[1] प्रमदादिव। बभ्राजे धृतवैमल्यम् अनभ्र[2] वर्त्म वार्मुचाम्॥२६५॥
परिनिष्पन्नशाल्यादिसस्यसम्पन्महो तदा। उद्भूतहर्षरोमाञ्चा स्वामिलाभादिवाभवत्॥२६६॥
ववुः सुरभयो वाताः स्वर्धुनीशीकरस्पृशः। आकीर्णपङ्कजरजःपटवासपटावृताः[3]॥२६७॥
मही समतला रेजे सम्मुखीन[4]तलोज्ज्वला। सुरैर्गन्धाम्बुभिः सिक्ता स्नातेव विरजाः सती॥२६८॥
अकालकुसुमोद्भेद दर्शयन्ति स्म पादपाः। ऋतुभिः सममागत्य संरुद्धा.[5] साध्वसादिव॥२६९॥
सुभिक्ष क्षेममारोग्यं गव्यूतीना[6] चतुःशती। भेजे भर्जिनमाहात्म्याद् अजातप्राणिहिंसना॥२७०॥
अकस्मात् प्राणिनो भेजुः प्रमदस्य परम्पराम्। तेनुः[7]परस्परां मैत्रीं बन्धु[8]भूयमिवाश्रिताः॥२७१॥
मकरन्दरजोवर्षि प्रत्यग्रोद्भिन्नकेसरम्। विचित्ररत्ननिर्माणकर्णिकं विलसद्दलम्॥२७२॥

करनेवाला और ऊँचा जो ॥२६०॥ भगवान्‌के विहारकालमे पद पदपर समस्त दिशाओको व्याप्त करनेवाला और ऊँचा जो भेरियोका शब्द हो रहा था वह ऐसा जान पडता था मानो कर्मरूपी शत्रुओको तर्जना ही कर रहा हो—उन्हे धौस ही दिखला रहा हो ॥२६१॥ जिनकी भौहरूपी पताकाएँ उड रही है ऐसी देवागनाए अपने शरीरकी प्रभासे दिशाओको लुप्त करती हुई आकाशरूपी रगभूमिमें नृत्य कर रही थी ॥२६२॥ देव लोग बड़े उत्साहके साथ पुण्यपाठ पढ रहे थे, किन्नरजातिके देव मनोहर आवाजसे गा रहे थे और गन्धर्व विद्याधरोके साथ मिलकर वीणा बजा रहे थे ॥२६३॥ जिनके मुकुटोके अग्रभाग देदीप्यमान हो रहे है ऐसे इन्द्र समस्त जगत्‌को प्रभामय करनेके लिये तत्पर हुए के समान भगवान्‌के इधर उधर चल रहे थे ॥२६४॥ उस समय समस्त दिशाए मानो आनन्दसे ही धूमरहित हो निर्मल हो गई थी और मेघरहित आकाश अतिशय निर्मलताको धारण कर सुशोभित हो रहा था ॥२६५॥ भगवान्‌के विहारके समय पके हुए शालि आदि धान्योसे सुशोभित पृथ्वी ऐसी जान पडती थी मानो स्वामीका लाभ होनेसे उसे हर्षके रोमाञ्च ही उठ आये हो ॥२६६॥ जो आकाशगगाके जलकणोका स्पर्श कर रही थी और जो कमलोके पराग-रजसे मिली हुई होनेसे सुगन्धित वस्त्रोसे ढकी हुई सी जान पडती थी ऐसी सुगन्धित वायु बह रही थी ॥२६७॥ उस समय पृथ्वी भी दर्पणतलके समान उज्ज्वल तथा समतल हो गई थी, देवोने उसपर सुगन्धित जलकी वर्षा की थी जिससे वह धूलिरहित होकर ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो रजोधर्मसे रहित तथा स्नान की हुई पतिव्रता स्त्री ही हो ॥२६८॥ वृक्ष भी असमयमे फूलोके उद्भेदको दिखला रहे थे अर्थात् वृक्षोपर बिना समयके ही पुष्प आ गये थे और उनसे वे ऐसे जान पडते थे मानो सब ऋतुओने भयसे एक साथ आकर ही उनका आलिगन किया हो ॥२६९॥ भगवान्‌के माहात्म्यसे चार सौ कोश पृथ्वी तक सुभिक्ष था, सब प्रकारका कल्याण था, आरोग्य था और पृथिवी प्राणियोकी हिसासे रहित हो गई थी ॥२७०॥ समस्त प्राणी अचानक आनन्दकी परम्पराको प्राप्त हो रहे थे और भाईपनेको प्राप्त हुएके समान परस्परकी मित्रता वढा रहे थे ॥२७१॥ जो मकरन्द और परागकी वर्षा कर रहा है, जिसमे नवीन केशर उत्पन्न हुई है जिसकी कर्णिका अनेक प्रकारके रत्नोसे बनी हुई है

---

१ धूमिका.–ल०, द०, इ०। २ निर्मेघम्। ३ गन्धचूर्ण एव पटवासस्तेनावृताः। ४ दर्पणतल। ५ आवृता.। ६ क्रोशानाम्। ७ पारस्परीम्। ८ बन्धुत्वम्।

भगवच्चरणन्यासप्रदेशेऽधिनभ स्थलम् । मृदुस्पर्शमुदारश्रि पङ्कज हैममुद्बभौ ॥२७३॥
पृष्ठतश्च पुरश्चास्य पद्मा सप्त विकासिन. । प्रादुर्बभूवुरुद्गन्धिसान्द्रकिञ्जल्करेणव. ॥२७४॥
तथान्यान्यपि पद्मानि तत्पर्यन्तेषु रेजिरे । लक्ष्म्यावसथ[1]सौधानि सञ्चारीणीव खाङ्गणे ॥२७५॥
हेमाम्भोजमया श्रेणीम् अलिश्रेणिभिरन्विताम् । सुरा [2]व्यरचयन्नेना सुरराजनिदेशत ॥२७६॥
रेजे राजीवराजी[3] सा [4]जिनपत्पङ्कजोन्मुखी । [5]आदित्सुरिव [6]तत्कान्तिम् अतिरेकादध स्नुताम् ॥२७७॥
तर्तिविहारपद्माना जिनस्योपाङ्घ्रि सा बभौ । नभ.सरसि सम्फुल्ला त्रिपञ्चकक्ृतप्रमा ॥२७८॥
तदा हेमाम्बुजैर्व्योम समन्तादातत बभौ । सरोवरमिवोत्फुल्लपङ्कज जिनदिग्जये ॥२७९॥
प्रमोदमयमातन्वन् इति विश्वं जगत्पति । विजहार मही कृत्स्ना प्रीणयन् स्ववचोमृतैः ॥२८०॥
मिथ्यान्धकारघटना विघटय्य वचोऽशुभि । जगदुद्योतयामास जिनार्को जनतार्तिहृत् ॥२८१॥
[7]यतो विजह्रे भगवान् हेमाब्जन्यस्तसत्क्रम । धर्मामृताम्बुसवर्षैस्ततो[8] भव्या धृति दधुः ॥२८२॥
जिने घन[9] इवाभ्यर्णे धर्मवर्षं प्रवर्षति । जगत्सुखप्रवाहेण पुप्लुवे[10] धृतनिर्वृ ति[11] ॥२८३॥
धर्मवारि जिनाम्भोदात्पाय[12] पायं कृतस्पृहा । चिर धृततृषो [13]दध्र तदानीं भव्यचातका ॥२८४॥

जिसके दल अत्यन्त सुशोभित हो रहे है, जिसका स्पर्श कोमल है और जो उत्कृष्ट शोभासे सहित है ऐसा सुवर्णमय कमलोका समूह आकाशतलमे भगवान्के चरण रखनेकी जगहमे सुशोभित हो रहा था ॥२७२–२७३॥ जिनकी केशरके रेणु उत्कृष्ट सुगन्धिसे सान्द्र है ऐसे वे प्रफुल्लित कमल सात तो भगवान्के आगे प्रकट हुए थे और सात पीछे ॥२७४॥ इसी प्रकार और कमल भी उन कमलोके समीपमे सुशोभित हो रहे थे, और वे ऐसे जान पडते थे मानो आकाशरूपी आगनमे चलते हुए लक्ष्मीके रहनेके भवन ही हो ॥२७५॥ भ्रमरोकी पङ्क्तियोसे सहित इन सुवर्णमय कमलोकी पङ्क्तिको देवलोग इन्द्रकी आज्ञासे बना रहे थे ॥२७६॥ जिनेन्द्र भगवान्के चरणकमलोके सन्मुख हुई वह कमलोकी पङ्क्ति ऐसी जान पड़ती थी मानो अधिकताके कारण नीचेकी ओर बहती हुई उनके चरणकमलोकी कान्ति ही प्राप्त करना चाहते हो ॥२७७॥ आकाशरूपी सरोवरमे जिनेन्द्रभगवान्के चरणोके समीप प्रफुल्लित हुई वह विहार कमलोकी पङ्क्ति पन्द्रहके वर्ग प्रमाण अर्थात् २२५ कमलोकी थी ॥२७८॥ उस समय, भगवान्के दिग्विजयके कालमे सुवर्णमय कमलोसे चारो ओरसे व्याप्त हुआ आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो जिसमे कमल फूल रहे है ऐसा सरोवर ही हो ॥२७९॥ इस प्रकार समस्त जगत्के स्वामी भगवान् वृषभदेवने जगत्को आनन्दमय करते हुए तथा अपने वचनरूपी अमृतसे सबको संतुष्ट करते हुए समस्त पृथिवीपर विहार किया था ॥२८०॥ जनसमूहकी पीडा हरनेवाले जिनेन्द्ररूपी सूर्यने वचनरूपी किरणोके द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकारके समूहको नष्ट कर समस्त जगत् प्रकाशित किया था २८१॥ सुवर्णमय कमलोपर पैर रखनेवाले भगवान्ने जहा जहांसे विहार किया वही वहीके भव्योने धर्मामृतरूप जलकी वर्षासे परम सन्तोष धारण किया था ॥२८२॥ जिस समय वे जिनेन्द्ररूपी मेघ समीपमे धर्म-रूपी अमृतकी वर्षा करते थे उस समय यह सारा ससार सतोष धारण कर सुखके प्रवाह-से प्लुत हो जाता था–सुखके प्रवाहमे डूब जाता था ॥२८३॥ उस समय अत्यन्त लालायित हुए भव्य जीवरूपी चातक जिनेन्द्ररूपी मेघसे धर्मरूपी जलको बार बार पी

---

१ निवासहर्म्याणि । २ रचयन्ति स्म । ३ पक्तिः । ४ जिनपादकमलोन्मुखी । ५ आदातुमिच्छु । ६ पदकमलकान्तिम् । ७ यस्मिन् । ८ तस्मिन् । ९ मेघ इव । १० मज्जति स्म । ११ वृतसुखम् । १२ पीत्वा पीत्वा । १३ धृतिमाययुः ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं चराचरगुरुर्जगदुज्जिहीर्षन्[1]
संसारखञ्ज[2]ननिमग्नमभग्नवृत्तिः ।
देवासुरैरनुगतो विजहार पृथ्वीं
हेमाब्जगर्भविनिवेशितपादपद्मः ॥२८५॥

तीव्राजवञ्जवदवानलदह्यमानम्
आह्लादयन् भुवनकाननमस्ततापः ।
धर्मामृताम्बुपृषतैः[3] परिषिच्य देवो
रेजे घनागम इवोदितदिव्यनादः ॥२८६॥

काशीमवन्तिकुरुकोसलसुह्मपुण्ड्रान्
[4]चेद्यङ्गवङ्गमगधान्ध्रकलिङ्गमद्रान् ।
पाञ्चालमालवदशार्णविदर्भदेशान्
सन्मार्गदेशनपरो विजहार धीरः ॥२८७॥

देवः प्रशान्तचरितः[5] शनकैर्विहृत्य
देशान् बहूनिति विबोधितभव्यसत्त्वः ।
भेजे जगत्त्रयगुरुर्विधुवीध्र[6]मुच्चैः
कैलासमात्मयशसोऽनुकृतिं[7] दधानम् ॥२८८॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

तस्याग्रे सुरनिर्मिते सुरुचिरे श्रीमत्सभामण्डले
पूर्वोक्ताखिलवर्णना[8]परिगते स्वर्गश्रियं तन्वति ।
श्रीमान् द्वादशभिर्गणैः परिवृतो भक्त्या नतैः सादरैः
आसामा[9]स विभुर्जिनः प्रविलसत्सत्प्रातिहार्याष्टकः ॥२८९॥

कर चिरकालके लिये सन्तुष्ट हो गये थे ॥२८४॥ इस प्रकार जो चर और अचर जीवोंके स्वामी हैं, जो संसाररूपी गर्तमें डूबे हुए जीवोंका उद्धार करना चाहते हैं, जिनकी वृत्ति अखण्डित है, देव और असुर जिनके साथ हैं तथा जो सुवर्णमय कमलोंके मध्यमें चरण कमल रखते हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्ने समस्त पृथ्वीमें विहार किया ॥२८५॥ उस समय, संसाररूपी तीव्रदावानलसे जलते हुए संसाररूपी वनको धर्मामृतरूप जलके छींटोंसे सींचकर जिन्होंने सबका संताप दूर कर दिया है और जिनके दिव्यध्वनि प्रकट हो रही है ऐसे वे भगवान् वृषभदेव ठीक वर्षाऋतुके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२८६॥ समीचीन मार्गके उपदेश देनेमें तत्पर तथा धीर वीर भगवान्ने काशी, अवन्ति, कुरु, कोशल, सुह्म, पुण्ड्र, चेदि, अंग, बंग, मगध, आंध्र, कलिङ्ग, मद्र, पञ्चाल, मालव, दशार्ण और विदर्भ आदि देशोंमें विहार किया था ॥२८७॥ इस प्रकार जिनका चरित्र अत्यन्त शान्त है, जिन्होंने अनेक भव्य जीवोंको तत्त्वज्ञान प्राप्त कराया है और जो तीनों लोकोंके गुरु हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव अनेक देशोंमें विहार कर चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, ऊँचे और अपना अनुकरण करनेवाले कैलास पर्वतको प्राप्त हुए ॥ २८८ ॥ वहां उसके अग्रभागपर देवोंके द्वारा बनाये हुए, सुन्दर, पूर्वोक्त समस्त वर्णनसे सहित और स्वर्गकी शोभा बढ़ानेवाले सभामण्डपमें विराजमान हुए । उस समय वे जिनेन्द्रदेव

१ उद्धर्तुमिच्छन् । २ गर्त । ३ बिन्दुभिः । पृषन्ती बिन्दु पृषताः पुमांसो विप्रुषस्त्रियः । ४ चेदि प्रभृ[illegible] । ५ प्रकर्षेण शान्तवर्तन । ६ विमल । ७ अनुकरणम् । ८ वर्णनायुक्ते । ९ आस्ते स्म ।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तर-
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिन[1] भव्याब्जिनीनामिनम्[2] ।
मानस्तम्भविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं
प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ॥२९०॥

इत्यार्षे भगवज्जिनसेनाचार्यप्रणीते त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसङ्ग्रहे
भगवद्विहारवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमं पर्व ।

अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीसे सहित थे, आदरके साथ भक्तिसे नम्रीभूत हुए बारह सभाके लोगोसे घिरे हुए थे और उत्तमोत्तम आठ प्रातिहार्योसे सुशोभित हो रहे थे ॥२८९॥ जिनके चरणकमल इन्द्रोके द्वारा पूजित है, घातियाकर्मोका क्षय होनेके बाद जिन्हे अनन्तचतुष्टयरूपी विभूति प्राप्त हुई है, जो भव्यजीवरूपी कमलिनियोको विकसित करनेके लिये सूर्यके समान है, जिनके मानस्तम्भोके देखने मात्रसे जगत्के अच्छे अच्छे पुरुष नम्रीभूत हो जाते है, जो तीनो लोकोके स्वामी है, जिन्हे अचिन्त्य बहिरङ्ग विभूति प्राप्त हुई है, और जो पाप रहित हैं ऐसे श्रीस्वामी जिनेन्द्रदेवको हमलोग भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करते है ॥२९०॥

इस प्रकार भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीत त्रिषष्टिलक्षण महापुराणसग्रहमे भगवान्के-
विहारका वर्णन करनेवाला पच्चीसवा पर्व समाप्त हुआ ।

---

१ प्रभुम् । २ सूर्यम् ।

महापुराण-प्रथमभागस्थ-

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

घ

च

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

ह

ह

अह[1] ममास्रवो [2]बन्धः संवरो निर्जरा क्षयः। कर्मणामिति तत्त्वार्था ध्येयाः सप्त नवाथवा[3] ॥१०८॥
[4]षट्तयद्रव्यपर्याययाथात्म्यस्यानुचिन्तनम्। यतो[5] ध्यानं ततो ध्येयः[6] कृत्स्नः षड्द्रव्यविस्तरः ॥१०९॥
नयप्रमाणजीवादिपदार्था न्यायभासुराः[7]। जिनेन्द्रवक्त्रप्रसूता ध्येया सिद्धान्तपद्धतिः[8] ॥११०॥
श्रुतमर्थाभिधानञ्च[9] [10]प्रत्ययश्चेत्यदस्त्रिधा। तस्मिन् ध्येये जगत्तत्त्वं ध्येयतामेति कार्त्स्न्यतः ॥१११॥
अथवा पुरुषार्थस्य परां [11]काष्ठामधिष्ठितः। परमेष्ठी जिनो ध्येयो [12]निष्ठितार्थो निरञ्जनः ॥११२॥
स[13] हि कर्ममलापायात् शुद्धिमात्यन्तिकीं श्रितः। सिद्धो निरामयो ध्येयो ध्यातॄणां [14]भावसिद्धये ॥११३॥
क्षायिकानन्तदृग्बोधसुखवीर्यादिभिर्गुणैः। युक्तोऽसौ योगिनां गम्यः सूक्ष्मोपि व्यक्तलक्षणः ॥११४॥
अमूर्तो [15]निष्कलोऽप्येष योगिनां ध्यानगोचरः[16]। किञ्चिन्न्यूनान्त्यदेहानुकारी जीवघनाकृतिः ॥११५॥
निःश्रेयसार्थिभिर्भव्यैः प्राप्तनिःश्रेयसः स हि। ध्येयः श्रेयस्करः सार्वः[17] [18]सर्वदृक् सर्वभाव[19]वित् ॥११६॥

है। ये सब भी ध्यान करने योग्य है ॥१०७॥ मै अर्थात् जीव और मेरे अजीव आस्रव बन्ध संवर निर्जरा तथा कर्मोका क्षय होने रूप मोक्ष इस प्रकार ये सात तत्त्व ध्यान करने योग्य है अथवा इन्ही सात तत्त्वोमे पुण्य और पाप मिला देनेपर नौ पदार्थ ध्यान करने योग्य है ॥१०८॥ क्योकि छह नयोके द्वारा ग्रहण किये हुए जीव आदि छह द्रव्यो और उनकी पर्यायोके यथार्थ स्वरूपका बार बार चिन्तवन करना ही ध्यान कहलाता है, इसलिये छह द्रव्योका समस्त विस्तार भी ध्यान करने योग्य है ॥१०९॥ नय, प्रमाण, जीव, अजीव आदि पदार्थ और सप्तभंगी रूप न्यायसे देदीप्यमान होनेवाली तथा जिनेन्द्रदेवके मुखसे प्रकट हुई सिद्धान्तशास्त्रोकी परिपाटी भी ध्यान करने योग्य है अर्थात् जैन शास्त्रोमे कहे गये समस्त पदार्थ ध्यान करनेके योग्य है ॥११०॥ शब्द, अर्थ और ज्ञान इस प्रकार तीन प्रकारका ध्येय कहलाता है। इस तीन प्रकार के ध्येयमे ही जगत्के समस्तपदार्थ ध्येयकोटिको प्राप्त हो जाते है। भावार्थ–जगत्के समस्त पदार्थ शब्द अर्थ और ज्ञान इन तीनो भेदोमे विभक्त है इसलिये शब्द, अर्थ और ज्ञान के ध्येय (ध्यान करने योग्य) होनेपर जगत्के समस्त पदार्थ ध्येय हो जाते है ॥१११॥ अथवा पुरुषार्थकी परम काष्ठाको प्राप्त हुए, कर्मरूपी शत्रुओको जीतनेवाले, कृतकृत्य और रागादि कर्ममलसे रहित सिद्ध परमेष्ठी ध्यान करने योग्य है ॥११२॥ क्योकि वे सिद्ध परमेष्टी कर्मरूपी मलके दूर हो जानेसे अविनाशी विशुद्धिको प्राप्त हुए है और रोगादि क्लेशोसे रहित है इसलिये ध्यान करनेवाले पुरुषोको अपने भावोकी शुद्धिके लिये उनका अवश्य ही ध्यान करना चाहिये। ॥११३॥ वे सिद्ध भगवान् कर्मोके क्षयसे होनेवाले अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य आदि गुणोसे सहित है और उनके यथार्थ स्वरूपको केवल योगी लोग ही जान सकते है। यद्यपि वे सूक्ष्म है तथापि उनके लक्षण प्रकट है ॥११४॥ यद्यपि वे भगवान् अमूर्त और अशरीर है तथापि योगी लोगोके ध्यानके विषय है अर्थात् योगी लोग उनका ध्यान करते है। उनका आकार अन्तिम शरीरसे कुछ कम केवल जीव प्रदेशरूप है ॥११५॥ मोक्षकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोको उन्हीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। वे स्वयं कल्याण रूप है, कल्याण करनेवाले है, सबका हित करनेवाले है, सर्वदर्शी है और सब पदार्थोंको जाननेवाले

१ आत्मा। २ मम सम्बन्धि ममकारः। जीवाजीवावित्यर्थः। अहं ममेत्येतद्द्वयमव्ययपदम्। ३ पुण्यपापसहिता एते नवपदार्थाः। ४ षड्नय अ०, प०, ल०। षड्रूप द०। षट्प्रकार। ५ यस्मात् कारणात्। ६ ध्येय ल०, इ०, म०। ७ सप्तभङ्गिरूपविचारैर्भास्वराः। ८ वचनरचनाः। ९ शब्दः। १० ज्ञानम्। ११ अवस्थाम्। १२ कृतकृत्यः। १३ जिनः। १४ –शुद्धये अ०, प०, नि०, म०, द०, इ०, स०। १५ अशरीरः। १६ ध्येयगो-ल०, म०, द०, प०। १७ सर्वहितः। १८ सर्वदर्शी। १९ पदार्थ।

स साकारोऽप्यनाकारो निराकारोऽपि साकृति. । [1]स्वसात्कृताखिलज्ञेयः सुज्ञानो[2] ज्ञानचक्षुषाम् ११७
मणिदर्पणसङ्क्रान्तच्छायात्मेव[3] स्फु[4]टाकृतिम् । दधज्जीवघनाकारम् अमूर्तो[5]ऽप्यचलस्थितिः ॥११८॥
वीतरागोऽप्यसौ ध्येयो[6] भव्याना भवविच्छिदे । विच्छिन्नबन्धनस्यास्य तादृग्नैसर्गिको गुणः॥११९॥
अथवा स्नातकावस्था[7] प्राप्तो घातिव्यपायतः । जिनोऽर्हन् केवली ध्येयो बिभ्रत्तेजोमय वपुः ॥१२०॥
रागाद्यविद्या[8]जयनाज्जिनोऽर्हन् घातिना हतेः । स्वात्मोपलब्धितः सिद्धो बुद्धस्त्रैलोक्यबोधनात् ॥१२१॥
त्रिकालगोचरानन्तपर्यायो[9]पचितार्थदृक् । विश्वज्ञो विश्वदर्शी च विश्वसाद्भूतचिद्गुणः ॥१२२॥
केवली केवलालोकविशालामललोचन. । घातिकर्मक्षयादाविर्भूतानन्तचतुष्टयः ॥१२३॥
द्विष[10]ड्भेदगणाकीर्णा सभावनिमधिष्ठित. । प्रातिहार्यैरभिव्यक्तत्रिजगत्प्राभवो विभुः ॥१२४॥

अर्थात् सर्वज्ञ है ॥११६॥ वे भगवान् साकार होकर भी निराकार है और निराकार होकर भी साकार है। यद्यपि उन्होने जगत्के समस्त पदार्थोंको अपने आधीन कर लिया है अर्थात् वे जगत्के समस्त पदार्थोंको जानते है परन्तु उन्हे ज्ञानरूप नेत्रोके धारण करनेवाले ही जान सकते है ॥ भावार्थ—वे सिद्ध भगवान् कुछ कम अन्तिम शरीरके आकार होते है इसलिये साकार कहलाते है परन्तु उनका वह आकार इन्द्रियज्ञानगम्य नही है इसलिये निराकार भी कहलाते है। शरीररहित होनेके कारण स्थूलदृष्टि पुरुप उन्हे यद्यपि देख नही पाते है इसलिये वे निराकार है, परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञानी जीव कुछ कम अन्तिम शरीरके आकार परिणत हुए उनके असख्य जीव प्रदेशोको स्पष्ट जानते है इसलिये साकार भी कहलाते है। यद्यपि वे ससारके सव पदार्थोंको जानते है परन्तु उन्हे ससारके सभी लोग नही जान सकते, वे मात्र ज्ञानरूप नेत्रके द्वारा ही जाने जा सकते है ॥११७॥ रत्नमय दर्पणमे पडे हुए प्रतिविम्वके समान उनका आकार अतिशय स्पष्ट है। यद्यपि वे अमूर्तिक है तथापि चैतन्य रूप घनाकारको धारण करनेवाले है और सदा स्थिर है ॥११८॥ यद्यपि वे भगवान् स्वय वीतराग है तथापि ध्यान किये जानेपर भव्य जीवोके ससारको अवश्य नष्ट कर देते है। कर्मोंके बन्धनको छिन्न-भिन्न करनेवाले उन सिद्ध भगवान्का वह उस प्रकारका एक स्वाभाविक गुण ही समझना चाहिये ॥११९॥ अथवा घातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेसे जो स्नातक अवस्थाको प्राप्त हुए है और जो तेजोमय परमौदारिक शरीरको धारण किये हुए है ऐसे केवलज्ञानी अर्हन्त जिनेन्द्र भी ध्यान करने योग्य है ॥१२०॥ राग आदि अविद्याओंको जीत लेनेसे जो जिन कहलाते है, घातिया कर्मोंके नष्ट होनेसे जो अर्हन्त (अरिहन्त) कहलाते है शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होनेसे जो सिद्ध कहलाते है और त्रैलोक्यके समस्त पदार्थोको जाननेसे जो वुद्ध कहलाते है, जो तीनो कालोमे होनेवाली अनन्त पर्यायोसे सहित समस्त पदार्थोको देखते है इसलिये विश्वदर्शी (सबको देखनेवाले) कहलाते है और जो अपने ज्ञानरूप चैतन्य गुणसे ससारके सव पदार्थोंको जानते है इसलिये विश्वज्ञ (सर्वज्ञ) कहलाते है। जो केवलज्ञानी है, केवलज्ञान ही जिनका विशाल और निर्मल नेत्र है, तथा घातिया कर्मोंके क्षय होनेसे जिनके अनन्तचतुष्टय प्रकट हुआ है, जो वारह प्रकारके जीवोके समूहसे भरी हुई सभाभूमि (समवसरण) मे विराजमान है, अप्ट प्रातिहार्योंके द्वारा जिनकी तीनो जगत्की प्रभुता प्रकट हो

---

१ स्वाधीनीकृतनिखिलज्ञेयपदार्थः । २ सुज्ञातो ल०, म० । शोभनज्ञान. अथवा सुज्ञाता । ३ छायास्वरूपमिव । ४ स्फुटाकृति द०, ल०, म०, प० । ५ अमूर्तोऽपीत्यत्र परमतकथितवाटवादीनाममूर्तस्य चरणात्मकत्वनिरासार्थमचलस्थितिरित्युक्तम् । ६ –ध्यातो भव्या– द०, ल०, म०, अ०, प० । ७ परिपूर्णज्ञानपरिणतिम् । ८ अज्ञान । ९ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् । १० द्वादशभेद ।

नियताकृतिरप्येव विश्वरूप स्वचिद्गुणै । सङ्क्रान्ता[1]शेष[2]विज्ञेयप्रतिबिम्बानुकारतः ॥१२५॥
विश्वव्यापी स विश्वार्थव्यापि विज्ञानयोगत । विश्वास्यो[3] विश्वतश्चक्षुर्विश्वलोकशिखामणि. ॥१२६॥
ससारसागराद् दूरम् उत्तीर्ण. [4]सुखसाद्भव । विधूतसकलक्लेशो विच्छिन्नभवबन्धन ॥१२७॥
निर्भयश्च निराकाङ्क्षो[5] निराबाधो निराकुल । निर्व्यपेक्षो[6] निरातङ्को नित्यो निष्कर्मकल्मषः[7] ॥१२८॥
नवकेवललब्ध्यादिगुणारब्धवपुष्टर.[8] । अभेद्य[9]सहतिर्वज्रशिलोत्कीर्ण इवाचलः ॥१२९॥
स एव लक्षणो ध्येय परमात्मा पर. पुमान् । परमेष्ठी परं तत्त्व परमज्योतिरक्षरम् ॥१३०॥
साधारणमिद ध्येय ध्यानयोर्धर्म्यशुक्लयोः । विशुद्धि[10]स्वामिभेदात्तु [11]तद्विशेषोऽवधार्यताम् ॥१३१॥
प्रशस्तप्रणिधान[12] यत् स्थिरमेकत्र वस्तुनि । तद्ध्यानमुक्त मुक्त्यङ्ग धर्म्यं शुक्लमिति द्विधा ॥१३२॥

नही है, जो सर्वसामर्थ्यवान् है, जो यद्यपि निश्चित आकारवाले है तथापि अपने चैतन्यरूप गुणोके द्वारा प्रतिबिम्बित हुए समस्त पदार्थोके प्रतिबिम्ब रूप होनेसे विश्वरूप है अर्थात् ससार के सभी पदार्थोके आकार धारण करनेवाले है, जो समस्त पदार्थोमे व्याप्त होनेवाले केवल ज्ञानके सम्बन्धसे विश्वव्यापी कहलाते है, समवसरण-भूमिमे चारो ओर मुख दिखनेके कारण जो विश्वास्य (विश्वतोमुख) कहलाते है, ससारके सब पदार्थोको देखनेके कारण जो विश्वतश्चक्षु (सब ओर है नेत्र जिनके ऐसे) कहलाते है, तथा सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण जो समस्त लोकके शिखामणि कहलाते है, जो ससाररूपी समुद्रसे शीघ्र ही पार होनेवाले है, जो सुखमय है, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो गये है और जिनके ससाररूपी बन्धन कट चुके है, जो निर्भय है, नि स्पृह है, बाधारहित है, आकुलतारहित है, अपेक्षारहित है, नीरोग है, नित्य है और कर्मरूपी कालिमासे रहित है, क्षायिक, ज्ञान, दर्शन, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व और चारित्र इन नौ केवललब्धि आदि अनेक गुणोसे जिनका शरीर अतिशय उत्कृष्ट है, जिनका कोई भेदन नही कर सकता और जो वज्रकी शिलामे उकेरे हुए अथवा वज्रकी शिलाओ से व्याप्त हुए पर्वतके समान निश्चल है–स्थिर है, इस प्रकार जो ऊपर कहे हुए लक्षणो से सहित है, परमात्मा है, परम पुरुष रूप है, परमेष्ठी है, परम तत्त्व स्वरूप है, परमज्योति (केवलज्ञान) रूप है और अविनाशी है ऐसे अर्हन्तदेव ध्यान करने योग्य है ॥१२१–१३०॥ अभी तक जिन ध्यान करने योग्य पदार्थोका वर्णन किया गया है वे सब धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यान इन दोनो ही ध्यानोके साधारण ध्येय है अर्थात् ऊपर कहे हुए पदार्थोका दोनो ही ध्यानो मे चिन्तवन किया जा सकता है । इन दोनो ध्यानोमे विशुद्धि और स्वामीके भेदसे ही परस्पर मे विशेषता समझनी चाहिये । भावार्थ–धर्मध्यानकी अपेक्षा शुक्ल ध्यानमे विशुद्धिके अश अधिक होते है, धर्म्य ध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर श्रेणी चढनेके पहले पहले तक ही रहता है और शुक्ल ध्यान श्रेणियोमे ही होता है। इन्ही सब बातोसे उक्त दोनो ध्यानोमे विशेषता कही है ॥१३१॥ जो किसी एक ही वस्तुमे परिणामोकी स्थिर और प्रशसनीय एकाग्रता होती है उसे ही ध्यान कहते है, ऐसा ध्यान ही मुक्तिका कारण होता है । वह ध्यान धर्म्य ध्यान और

[1]तत्रानपेत यद्धर्मात्तद्ध्यान धर्म्यमिष्यते । धर्म्यो हि वस्तुयाथात्म्यम् उत्पादादि[2]त्रयात्मकम् ॥१३३॥
तदाज्ञापायसस्थानविपाकविचयात्मकम् । चतुर्विकल्पमाम्नातं ध्यानमाम्नाय[3]वेदिभिः ॥१३४॥
तत्राज्ञेत्यागम. सूक्ष्मविषय प्रणिगद्यते । [4]दृश्यानुमेयवर्ज्ये हि श्रद्धेयांशे [5]गतिः श्रुतेः[6] ॥१३५॥
श्रुति सूनृतमाज्ञाप्तवचो वेदाङ्गमागम । आम्नायश्चेति पर्यायैः सोधिगम्यो मनीषिभिः ॥१३६॥
अनादिनिधन सूक्ष्म सद्भू[7]तार्यप्रकाशनम् । पुरुषार्थोपदेशित्वाद् यद्भूतहितमूर्जितम् ॥१३७॥
अजय्यममित [8]तीर्थ्यैं अनालीढमहोदयम् । महानुभावमर्थावगाढं गम्भीरशास[10]नम् ॥१३८॥
पर प्रवचन [11]सूक्तमाप्तोपज्ञमनन्यथा[12] । मन्यमानो मुनिर्ध्यायेद् भावानाज्ञावि[13]भावितान् ॥१३९॥
जैनीं प्रमाणयन्नाज्ञा योगी योगविदा वरः । ध्यायेद्धर्मास्तिकायादीन् भावान् सूक्ष्मान् यथागमम् ॥१४०॥
आज्ञाविचय एष स्याद् अपायविचयः पुनः । ताप[14]त्रयादिजन्माब्धिगतापायविचिन्तनम् ॥१४१॥

शुक्ल ध्यानके भेदसे दो प्रकारका होता है ॥१३२॥ उन दोनोमेसे जो ध्यान धर्मसे सहित होता है वह धर्म्य ध्यान कहलाता है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनो सहित जो वस्तुका यथार्थ स्वरूप है वही धर्म कहलाता है । भावार्थ—वस्तुके स्वभावको धर्म कहते है और जिस ध्यान मे वस्तुके स्वभावका चिन्तवन किया जाता है उसे धर्म्यध्यान कहते है ॥१३३॥ आगम की परम्पराको जाननेवाले ऋषियोने उस धर्म्य ध्यानके आज्ञाविचय, अपायविचय, सस्थान विचय और विपाकविचय इस प्रकार चार भेद माने है ॥१३४॥ उनमेसे अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ को विषय करनेवाला जो आगम है उसे आज्ञा कहते है क्योकि प्रत्यक्ष और अनुमानके विषयसे रहित केवल श्रद्धान करने योग्य पदार्थमे एक आगम की ही गति होती है । भावार्थ—ससार मे कितने ही पदार्थ ऐसें है जो न तो प्रत्यक्षसे जाने जा सकते है और न अनुमानसे ही । ऐसे सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थोका ज्ञान सिर्फ आगमके द्वारा ही होता है अर्थात् आप्त प्रणीत आगममे ऐसा लिखा है इसलिये ही वे माने जाते है ॥१३५॥ श्रुति, सूनृत, आज्ञा, आप्त वचन, वेदाङ्ग, आगम और आम्नाय इन पर्यायवाचक शब्दोसे बुद्धिमान् पुरुष उस आगम को जानते है ॥१३६॥ जो आदि और अन्तसे रहित है, सूक्ष्म है, यथार्थ अर्थको प्रकाशित करने वाला है, जो मोक्षरूप पुरुपार्थका उपदेशक होनेके कारण ससारके समस्त जीवोका हित करने-वाला है, युक्तियोसे प्रवल है, जो किसी के द्वारा जीता नही जा सकता, जो अपरिमित है, परवादी लोग जिसके माहात्म्यको छू भी नही सकते है, जो अत्यन्त प्रभावशाली है, जीव अजीव आदि पदार्थोसे भरा हुआ है, जिसका शासन अतिशय गभीर है, जो परम उत्कृष्ट है, सूक्ष्म है और आप्तके द्वारा कहा हुआ है ऐसे प्रवचन अर्थात् आगमको सत्यार्थ रूप मानता हुआ मुनि आगम-मे कहे हुए पदार्थोका ध्यान करे ॥१३७–१३९॥ योगके जाननेवालोमे श्रेष्ठ योगी जिनेन्द्र भगवान्की आज्ञाको प्रमाण मानता हुआ धर्मास्तिकाय आदि सूक्ष्म पदार्थोका आगमके कहे अनुसार ध्यान करे ॥१४०॥ इस प्रकारके ध्यान करनेको आज्ञाविचय नामका धर्म्यध्यान कहते है। अब आगे अपायविचय नाम के धर्म्य ध्यानका वर्णन किया जाता है। तीन प्रकारके सताप आदिसे भरे हुए ससाररूपी समुद्रमे जो प्राणी पडे हुए है उनके अपायका चिन्तवन करना सो अपायविचय नामका धर्म्यध्यान है । भावार्थ—यह ससाररूपी समुद्र मानसिक,

---

१ ध्यानद्वये । २ उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपम् । ३ परमागमवेदिभि । ४ प्रत्यक्षानुमानरहिते । ५ अवगमनम् । ६ आगमस्य । ७ सत्यस्वरूप । ८ परवादिभि । ९ तलस्पर्शरहितम् । १० आज्ञा । ११ सूक्तम्– प०, ल०, म०, द०, इ० । १२ विपरीताभावेन । १३ आगमेन ज्ञातान् । १४ जाति-जरामरणरूप, अथवा रागद्वेषमोहरूप, अथवा आधिदैविक दैवमधिकृत्य प्रवृत्तम्, आधिभौतिक भूतग्रह-मधिकृत्य प्रवृत्तम्, आध्यात्मिकरूपम् आत्मानमधिकृत्य प्रवृत्तम् ।

तदपा[1]यप्रतीकारचि[2]त्रोपायानुचिन्तनम् । अत्रैवान्तर्गतं ध्ये[3]यम् अनुप्रेक्षादिलक्षणम् ॥१४२॥
शुभाशुभविभक्तानां कर्मणां परिपाकतः[4] । भवावर्तस्य वैचित्र्यम् अभि[5]सन्दधतो मुनेः ॥१४३॥
विपाकविचयं धर्म्यम् आमनन्ति कृता[6]गमाः । विपाकश्च द्विधाम्नातः कर्मणामाप्तसू[7]क्तिषु ॥१४४॥
यथाकालमुपायाच्च फलप[8]क्तिर्वनस्पतेः । यथा तथैव कर्मापि फलं दत्ते शुभाशुभम् ॥१४५॥
मूलोत्तरप्रकृत्यादिबन्धस[9]त्त्वाद्युपाश्रयः । कर्मणामुदयश्चित्रः प्राप्य द्रव्या[10]दिसन्निधिम् ॥१४६॥
[11]यतश्च तद्विपा[12]कज्ञः तदपा[13]याय चेष्टते । [14]ततो ध्येयमिदं ध्यानं मुक्त्युपायो मुमुक्षुभिः ॥१४७॥
संस्थानविचयं प्राहुः लोकाकारानुचिन्तनम् । तदन्तर्भूतजीवादितत्त्वान् [15]वीक्षणलक्षि[16]तम् ॥१४८॥
द्वीपाब्धिवलयानद्रीन् सरितश्च सरांसि च । विमानभवनव्यन्तरावासनरकक्षितीः ॥१४९॥
त्रिजगत्सन्निवेशेन सममेतान्यथागमम् । भावान् मुनिरनुध्यायेत् संस्थानविच[17]योपगः ॥१५०॥
जीवभेदांश्च तत्र[18]त्यान् ध्यायेन्मुक्तेतरात्मकान् । ज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वद्रष्टृत्वादींश्च [19]तद्गुणान् ॥१५१॥

वाचनिक, कायिक अथवा जन्म-जरा-मरणसे होनेवाले, तीन प्रकारके संतापोंसे भरा हुआ है। इसमें पड़े हुए जीव निरन्तर दुःख भोगते रहते हैं। उनके दुःखका बार-बार चिन्तवन करना सो अपायविचय नामका धर्म्यध्यान है ॥१४१॥ अथवा उन अपायों (दुःखों) के दूर करनेकी चिन्तासे उन्हें दूर करनेवाले अनेक उपायोंका चिन्तवन करना भी अपायविचय कहलाता है। बारह अनुप्रेक्षा तथा दश धर्म आदिका चिन्तवन करना इसी अपायविचय नामके धर्म्य ध्यानमें शामिल समझना चाहिये ॥१४२॥ शुभ और अशुभ भेदोंमें विभक्त हुए कर्मोंके उदय-से संसाररूपी आवर्तकी विचित्रताका चिन्तवन करनेवाले मुनिके जो ध्यान होता है उसे आगम के जाननेवाले गणधरादि देव विपाकविचय नामका धर्म्यध्यान मानते हैं। जैन शास्त्रोंमें कर्मोंका उदय दो प्रकारका माना गया है। जिस प्रकार किसी वृक्षके फल एक तो समय पाकर अपने आप पक जाते हैं और दूसरे किन्हीं कृत्रिम उपायोंसे पकाये जाते हैं उसी प्रकार कर्म भी अपने शुभ अथवा अशुभ फल देते हैं अर्थात् एक तो स्थिति पूर्ण होनेपर स्वयं फल देते हैं और दूसरे तपश्चरण आदिके द्वारा स्थिति पूर्ण होनेसे पहले ही अपना फल देने लगते हैं ॥१४३–१४५॥ मूल और उत्तर प्रकृतियोंके बन्ध तथा सत्ता आदिका आश्रय लेकर द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मोंका उदय अनेक प्रकारका होता है ॥१४६॥ क्योंकि कर्मोंके विपाक (उदय) को जाननेवाला मुनि उन्हें नष्ट करनेके लिये प्रयत्न करता है इसलिये मोक्षाभिलाषी मुनियों को मोक्षके उपायभूत इस विपाकविचय नामके धर्म्य ध्यानका अवश्य ही चिन्तवन करना चाहिये ॥१४७॥ लोकके आकारका बार-बार चिन्तवन करना तथा लोकके अन्तर्गत रहने-वाले जीव अजीव आदि तत्त्वोंका विचार करना सो संस्थान विचय नामका धर्म्य ध्यान है॥१४८॥ संस्थानविचय धर्म्य ध्यानको प्राप्त हुआ मुनि तीनों लोकोंकी रचनाके साथ-साथ द्वीप, समुद्र, पर्वत, नदी, सरोवर, विमानवासी, भवनवासी तथा व्यन्तरोंके रहनेके स्थान और नरकोंकी भूमियां आदि पदार्थोंका भी शास्त्रानुसार चिन्तवन करे ॥१४९–५०॥ इसके सिवाय उस लोकमें रहनेवाले संसारी और मुक्त ऐसे दो प्रकार वाले जीवोंके भेदोंका जानना, कर्ता-

---

१ तापत्रयाद्यपायप्रतीकार। २ चिन्तो- ल०, म०, इ०, अ०, प०, स०। ३ ज्ञेयम्। ४ संजातस्य इति शेषः। ५ ध्यायतः। अपि ल०, म०। ६ सम्पूर्णागमाः। ७ परमागमेषु। ८ पाक। ९ सत्ताद्युपा- इ०। १० द्रव्यक्षेत्रकालभाव-। ११ यस्मात् कारणात्। १२ कर्मणा-मुदयवित् पुमान्। १३ कर्मापायाय। १४ ततः कारणात्। १५ विचार-। १६ -लक्षणम् ल०, म०, इ०, अ०, स०। १७ संस्थानविचयज्ञः। १८ तत्र त्रिजगति भवान्। १९ जीवगुणान्। यद्गुणान् ल०॥

तेषां स्वकृतकर्मानुभावोत्थमतिदुस्तरम् । भवाब्धिं व्यसनावर्तं दोषयाद[1]कुलाकुलम् ॥१५२॥
सज्ज्ञाननावा सन्तार्यम् अतार्यं ग्रन्थिका[2]त्मभिः । अपारमतिगम्भीरं ध्यायेदध्यात्मविद् यतिः ॥१५३॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वोऽप्यागमविस्तरः । [3]नयभङ्गशताकीर्णो ध्येयोऽध्यात्मविशुद्धये ॥१५४॥
[4]तदप्रमत्ततालम्ब्य स्थितिमान्तर्मुहूर्तिकीम् । दधानमप्रमत्तेषु परां[5] कोटिमधिष्ठितम् ॥१५५॥
सद्दृष्टिषु यथाम्नाय शेषेष्वपि[6] कृतस्थिति । प्रकृष्टशुद्धिमल्लेश्यात्रयोपोद्बल[7]बृंहितम् ॥१५६॥
क्षायोपशमिक भाव स्वसात्कृत्य विजृम्भितम् । महोदर्कं [8]महाप्रज्ञैः महर्षिभिरुपासितम् ॥१५७॥
[9]वस्तुधर्मानुयायित्वात् प्राप्तान्वर्थनिरुक्तिकम् । धर्म्यं ध्यानमनुध्येयं यथोक्तध्येयविस्तरम् ॥१५८॥
प्रसन्नचित्तता धर्मसवेग शुभयोगता[10] । सुश्रुतत्व समाधानम् [11]आज्ञाधिगमजा रुचिः ॥१५९॥
भवन्त्येतानि लिङ्गानि धर्म्यस्यान्तर्गतानि वै । सानुप्रेक्षाश्च पूर्वोक्ता विविधाः शुभभावनाः ॥१६०॥

पना, भोक्तापना और दर्शन आदि जीवोके गुणोका भी ध्यान करे ॥१५१॥ अध्यात्मको जाननेवाला मुनि इस ससाररूपी समुद्रका भी ध्यान करे जो कि जीवोके स्वय किये हुए कर्मोके माहात्म्यसे उत्पन्न हुआ है, अत्यन्त दुस्तर है, व्यसनरूपी भवरोसे भरा हुआ है, दोषरूपी जल-जन्तुओसे व्याप्त है, सम्यग्ज्ञानरूपी नावसे तैरनेके योग्य है, परिग्रही साधु जिसे कभी नही तैर सकते, जिसका पार नही है और जो अतिशय गम्भीर है ॥१५२–१५३॥ अथवा इस विषयमे अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? नयोके सैकडो भगोसे भरा हुआ जो कुछ आगमका विस्तार है वह सब अन्तरात्माकी शुद्धिके लिये ध्यान करने योग्य है ॥१५४॥ यह धर्म्य ध्यान अप्रमत्त अवस्थाका आलवन कर अन्तर्मुहूर्त तक स्थित रहता है और प्रमादरहित (सप्तम गुण स्थानवर्ती) जीवोमे ही अतिशय उत्कृष्टताको प्राप्त होता है ॥१५५॥ इसके सिवाय अतिशय शुद्धिको धारण करनेवाला और पीत, पद्म तथा शुक्ल ऐसी तीन शुभ लेश्याओके बलसे वृद्धिको प्राप्त हुआ यह धर्म्य ध्यान शास्त्रानुसार सम्यग्दर्शनसे सहित चौथे गुणस्थानमे तथा शेषके पाचवे और छठवे गुणस्थानमे भी होता है। भावार्थ–इन गुणस्थानोमे धर्म्य ध्यान हीनाधिक भावसे रहता है। धर्म्यध्यान धारण करनेके लिये कमसे कम सम्यग्दृष्टि अवश्य होना चाहिये क्योकि सम्यग्दर्शनके विना पदार्थोके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान और निर्णय नही होता। मन्दकषायी मिथ्यादृष्टि जीवोके जो ध्यान होता है उसे शुभ भावना कहते है ॥१५६॥ यह धर्म्य ध्यान क्षायोपशमिक भावोको स्वाधीन कर वढता है। इसका फल भी वहुत उत्तम होता है और अतिशय बुद्धिमान् महर्षि लोग भी इसे धारण करते है ॥१५७॥ वस्तुओके धर्मका अनुयायी होनेके कारण जिसे धर्म्य ध्यान ऐसा सार्थक नाम प्राप्त हुआ है और जिसमे ध्यान करने योग्य पदार्थोका ऊपर विस्तारसे वर्णन किया जा चुका है ऐसे इस धर्म्यध्यानका वार वार चिन्तवन करना चाहिये ॥१५८॥ प्रसन्नचित्त रहना, धर्मसे प्रेम करना, शुभ योग रखना, उत्तम शास्त्रोका अभ्यास करना, चित्त स्थिर रखना और आज्ञा (शास्त्रका कथन) तथा स्वकीय ज्ञानसे एक प्रकारकी विशेष रुचि (प्रीति अथवा श्रद्धा) उत्पन्न होना ये धर्मध्यानके बाह्य चिह्न है और अनुप्रेक्षाए तथा पहले कही हुई अनेक प्रकारकी शुभ भावनाए उसके

---

१ जलजन्तुसनक्र। २ परिग्रहवद्भि। ३ नयभेद–। ४ धर्म्यध्यानम्। ५ परमप्रकर्षम्। ६ असयतदेशसयतप्रमत्तेषु। ७ सहायविजृम्भितम्। ८ महाप्राज्ञै– ल०, म०, द०, इ०, प०। ९ वस्तुस्वभावत्वात्। १० शुभपरिणाम। ११ आज्ञा नान्यथावादिनो जिना इति श्रद्धानम्। अधिगम प्रवचनपरिज्ञानम् ताभ्या जाता रुचि।

बाह्यञ्च लिङ्गमङ्गानां सन्निवेश.[1] पुरोदितः। प्रसन्नवक्त्रता सौम्या दृष्टिश्चेत्यादि लक्ष्यताम् ॥१६१।
फल ध्यानवरस्यास्य विपुला निर्जरैनसाम्। शुभकर्मोदयोद्भूत सुखञ्च विबुधेशिनाम् ॥१६२॥
स्वर्गापवर्गसम्प्राप्ति[2] फलमस्य प्रचक्षते[3]। साक्षात्स्वर्गपरिप्राप्ति. पारम्पर्यात् परम्पदम् ॥१६३॥
ध्यानेऽप्युपरते[4] धीमान् अभीक्ष्ण[5] भावयेन्मुनिः। सानुप्रेक्षाः शुभोदर्का भवाभावाय भावना.॥१६४॥
इत्युक्तलक्षण धर्म्यं मगधाधीश, निश्चिनु। शुक्लध्यानमितो वक्ष्ये साक्षान्मुक्त्य[6]ङ्गमङ्गिनाम् ॥१६५॥
कषायमलविश्लेषात् शुक्लशब्दाभिधेयताम्। [7]उपेयिवदिदं ध्यान सान्तर्भेद[8] निबोध मे[9] ॥१६६॥
शुक्ल परमशुक्लञ्चेत्याम्नाये[10] तद्द्विधोदितम्। छद्मस्थस्वामिकं पूर्वं पर[11] केवलिना मतम् ॥१६७॥
द्वेधाद्य[12] स्यात् पृथक्त्वादि[13] वीचारान्तवितर्कणम्। [14]तथैकत्वाद्यवीचारपदान्तञ्च वितर्कणम् ॥१६८।
इत्याद्यस्य भिदे[15] स्याताम् अन्वर्थां [16]श्रुतिमाश्रिते। तदर्थव्यक्तये चैतत् तन्नामद्वयनिर्वच. ॥१६९॥
पृथक्त्वेन वितर्कस्य वीचारो यत्र तद्विदुः। सवितर्कं सवीचारं पृथक्त्वादिपदाह्वयम् ॥१७०॥

अन्तरङ्ग चिह्न है ॥१५९–१६०॥ पहले कहा हुआ अङ्गोका सन्निवेश होना अर्थात् पहले जिन पर्यङ्क आदि आसनोका वर्णन कर चुके है उन आसनोको धारण करना, मुखकी प्रसन्नता होना और दृष्टिका सौम्य होना आदि सब भी धर्म्यध्यान के वाह्य चिह्न समझना चाहिये ॥१६१॥ अशुभ कर्मोकी अधिक निर्जरा होना और शुभ कर्मोके उदयसे उत्पन्न हुआ इन्द्र आदि का सुख प्राप्त होना यह सब इस उत्तम धर्म्य ध्यानका फल है ॥१६२॥ अथवा स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होना इस धर्म्य ध्यानका फल कहा जाता है। इस धर्म्य ध्यानसे स्वर्गकी प्राप्ति तो साक्षात् होती है परन्तु परम पद अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति परम्परासे होती है ॥१६३॥ ध्यान छूट जानेपर भी बुद्धिमान् मुनिको चाहिये कि वह ससारका अभाव करनेके लिये अनुप्रेक्षाओ सहित शुभ फल देनेवाली उत्तम उत्तम भावनाओका चिन्तवन करे ॥१६४॥ गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते है कि मगधाधीश, इस प्रकार जिसका लक्षण कहा जा चुका है ऐसे इस धर्म्यध्यानका तू निश्चय कर–उसपर विश्वास ला। अब आगे शुक्ल ध्यानका निरूपण करूगा जो कि जीवोके मोक्ष प्राप्त होनेका साक्षात् कारण है ॥१६५॥ कषायरूपी मलके नष्ट होने से जो शुक्ल ऐसे नामको प्राप्त हुआ है ऐसे इस शुक्ल ध्यानका अवान्तर भेदोसे सहित वर्णन करता हूँ सो तू उसे मुझसे अच्छी तरह समझ ले ॥१६६॥ वह शुक्ल ध्यान शुक्ल और परम शुक्लके भेदसे आगममे दो प्रकारका कहा गया है, उनमेसे पहला शुक्ल ध्यान तो छद्मस्थ मुनियो-के होता है और दूसरा परम शुक्ल ध्यान केवली भगवान् (अरहन्तदेव) के होता है ॥१६७॥ पहले शुक्ल ध्यानके दो भेद है, एक पृथक्त्ववितर्कवीचार और दूसरा एकत्ववितर्कवीचार ॥१६८॥ इस प्रकार पहले शुक्ल ध्यानके जो ये दो भेद है, वे सार्थक नाम वाले है। इनका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये दोनो नामोकी निरुक्ति (व्युत्पत्ति-शब्दार्थ) इस प्रकार समझना चाहिये ॥१६९॥ जिस ध्यानमे वितर्क अर्थात् शास्त्रके पदोका पृथक् पृथक् रूपसे वीचार अर्थात् सक्रमण होता रहे उसे पृथक्त्ववितर्कवीचार नामका शुक्ल ध्यान कहते है। भावार्थ– जिसमे अर्थ व्यजन और योगोका पृथक् पृथक् सक्रमण होता रहे अर्थात् अर्थको छोडकर व्यजन (शव्द) का और व्यजनको छोडकर अर्थका चिन्तवन होने लगे अथवा इसी प्रकार मन, वचन और काय इन तीनो योगोका परिवर्तन होता रहे उसे पृथक्त्ववितर्कवीचार कहते

---

१ पत्यङ्कादि। २ सम्प्राप्ति इ०। ३ प्रचक्ष्यते इ०। ४ सम्पूर्णे सति। ५ मुहुर्मुहु। ६ मोक्षकारणम्। ७ प्राप्तम्। ८ मध्ये भेदम्। ९ निवोध जानीहि, मे मम सम्वन्धि ध्यानम्। निवोधये इति पाठे ज्ञापयामि। १० परमागमे। ११ शुक्लम्। १२ शुक्लम्। १३ पृथक्त्व-वितर्कवीचारम्। १४ एकत्ववितर्कावीचारम्। १५ भेदौ। १६ सन्नाम्।

एक[illegible]न वितर्कस्य स्याद्यत्राविपरिणुता[1] । सवितर्कमवीचारम् एकत्वादिपदाभिधाम् ॥१७१॥
पृथक्त्व विद्धि नानात्व वितर्क. श्रुतमुच्यते । अर्थव्यञ्जन[2]योगाना [3]वीचार· सङ्क्रमो मतः ॥१७२॥
अर्थादर्थान्तर गच्छन् व्यञ्जनाद्[4] व्यञ्जनान्तरम् । योगाद्योगान्तरं गच्छन् ध्यायतीद वशी मुनिः ॥१७३॥
त्रियोगः [6]पूर्वविद् यस्माद् ध्यायत्येन[8]न्मुनीश्वर. । सवितर्कं सवीचारमतः स्याच्छुक्लमादिमम् ॥१७४॥
ध्येयमस्य श्रुतस्कन्धवार्धेर्वागर्थविस्तर. । फल स्यान्मोहनीयस्य प्रक्षय· प्रशमोपि वा ॥१७५॥
इदमत्र तु तात्पर्यं श्रुतस्कन्धमहार्णवात् । अर्थमेक समादाय ध्यायन्नर्थान्तर व्रजेत् ॥१७६॥
शब्दाच्छब्दान्तर [9]यायाद् योग योगान्तरादपि । सवीचारमिद तस्मात् सवितर्कञ्च लक्ष्यते ॥१७७॥
[10]वागर्थरत्नसम्पूर्णं नय[10]भङ्गतरङ्गकम् । प्रसृत[11]ध्यानगम्भीर [12]पदवाक्यमहाजलम् ॥१७८॥
[13]उत्पादादित्रयोद्वेल सप्तभङ्गीवृहद्ध्वनिम् । पूर्वपक्षवशायातमतयादः[14]कुलाकुलम् ॥१७९॥

है ॥१७०॥ जिस ध्यानमे वितर्कके एकरूप होनेके कारण वीचार नही होता अर्थात् जिसमे अर्थ व्यजन और योगोका सक्रमण नही होता उसे एकत्ववितर्कवीचार नामका शुक्ल ध्यान कहते है ॥१७१॥ अनेक प्रकारताको पृथक्त्व समझो, श्रुत अर्थात् शास्त्रको वितर्क कहते है और अर्थ व्यजन तथा योगोंका सक्रमण (परिवर्तन) वीचार माना गया है ॥१७२॥ इन्द्रियोको वश करनेवाला मुनि, एक अर्थसे दूसरे अर्थको, एक शब्दसे दूसरे शब्दको और एक योगसे दूसरे योगको प्राप्त होता हुआ इस पहले पृथक्त्ववितर्कवीचार नामके शुक्ल ध्यानका चिन्तवन करता है ॥१७३॥ क्योकि मन वचन काय इन तीनो योगोको धारण करनेवाले और चौदह पूर्वोके जाननेवाले मुनिराज ही इस पहले शुक्ल ध्यानका चिन्तवन करते है इसलिये ही यह पहला शुक्ल ध्यान सवितर्क और सवीचार कहा जाता है ॥१७४॥ श्रुतस्कन्धरूपी समुद्रके शब्द और अर्थोका जितना विस्तार है वह सब इस प्रथम शुक्ल ध्यानका ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य विषय है और मोहनीय कर्मका क्षय अथवा उपशम होना इसका फल है । भावार्थ— यह शुक्ल ध्यान उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी दोनो प्रकारकी श्रेणियोमे होता है । उपशमश्रेणी वाला मुनि इस ध्यानके प्रभावसे मोहनीय कर्मका उपशम करता है और क्षपक श्रेणीमे आरूढ हुआ मुनि इस ध्यानके प्रतापसे मोहनीय कर्मका क्षय करता है इसलिये सामान्य रूपसे उपशम और क्षय दोनो ही इस ध्यानके फल कहे गये है ॥१७५॥ यहा ऐसा तात्पर्य समझना चाहिये कि ध्यान करनेवाला मुनि श्रुतस्कन्धरूपी महासमुद्रसे कोई एक पदार्थ लेकर उसका ध्यान करता हुआ किसी दूसरे पदार्थको प्राप्त हो जाता है अर्थात् पहले ग्रहण किये हुए पदार्थको छोडकर दूसरे पदार्थका ध्यान करने लगता है । एक शब्दसे दूसरे शब्दको प्राप्त हो जाता है और इसी प्रकार एक योगसे दूसरे योगको प्राप्त हो जाता है इसीलिये इस ध्यानको सवीचार और सवितर्क कहते है ॥१७६–१७७॥ जो शब्द और अर्थरूपी रत्नोसे भरा हुआ है, जिसमे अनेक नयभगरूपी तरगे उठ रही है, जो विस्तृत ध्यानसे गभीर है, जो पद और वाक्यरूपी अगाध जलसे सहित है, जो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य के द्वारा उद्वेल (ज्वार-भाटाओसे सहित) हो रहा है स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, आदि सप्त भग ही जिसके विशाल शब्द (गर्जना) है, जो पूर्वपक्ष

१ अविनाशीपना । २ [illegible] । ३ मनोवाक्कायकर्म । ४ शब्दाच्छब्दान्तरम् । ५ मनो-[illegible] । ६ पूर्वश्रुतवेदी । ७ शुक्लध्यानम् । –त्येतन्मुनीश्वरा द० । ९ गच्छेत् । [illegible] । १० [illegible] । ११ [illegible] गम्भीरम् । प्रसृतध्यान– ल०, म० । १२ [illegible] । [illegible] । १३ उत्पादव्ययध्रौव्यत्रय– । १४ बौद्धादिमत [illegible] ।

कृता[1]वतारमुद्बोधयानपात्रैर्महर्धिभिः । गणाधीशमहा[2]सार्थवाहैश्चारित्रकेतनैः ॥१८०॥
[3]नयोपनयसम्पातमहावातविघूर्णितम् । रत्नत्रयमयैर्द्वी[4]पैः अवगाढमनेकधा ॥१८१॥
श्रुतस्कन्धमहासिन्धुम् अवगाह्य महामुनिः । ध्यायेत् पृथक्त्वसत्तर्कवीचारं ध्यानमग्रिमम्[5] ॥१८२॥
प्रशान्तक्षीणमोहेषु श्रेण्योः शेषगुणेषु[6] च । यथाम्नायमिदं ध्यानम् आमनन्ति मनीषिणः ॥१८३॥
द्वितीयमाद्यवज्ज्ञेयं विशेषस्त्वेकयोगिनः[7] । प्रक्षीणमोहनीयस्य [8]पूर्वज्ञस्यामितद्युतेः[9] ॥१८४॥
सवितर्कमवीचारम् एकत्व[10] ध्यानमर्जितम् । ध्यायत्यस्तकषायोऽसौ घातिकर्माणि शातयन्[11] ॥१८५॥
फलमस्य भवेद् घातित्रितयप्रक्षयोद्भवम् । कैवल्यं प्रमिताशेषपदार्थं ज्योतिरक्षणम् ॥१८६॥
ततः पूर्वविदामाद्ये शुक्ले श्रेण्योर्यथायथम् । विज्ञेये त्र्येकयोगाना[12] [13]यथोक्तफलयोगिनी ॥१८७॥

करनेके लिये आये हुए अनेक परमतरूपी जलजन्तुओसे भरा हुआ है, वडी-वडी सिद्धियोके धारण करनेवाले गणधरदेवरूपी मुख्य व्यापारियोने चारित्ररूपी पताकाओसे सुशोभित सम्यग्ज्ञानरूपी जहाजोके द्वारा जिसमे अवतरण किया है, जो नय और उपनयोके वर्णनरूप महावायुसे क्षोभित हो रहा है और जो रत्नत्रयरूपी अनेक प्रकारके द्वीपोसे भरा हुआ है, ऐसे श्रुतस्कन्धरूपी महासागरमे अवगाहन कर महामुनि पृथक्त्ववितर्कवीचार नामके पहले शुक्ल-ध्यानका चिन्तवन करे। भावार्थ—ग्यारह अग और चौदह पूर्वके जाननेवाले मुनिराज ही प्रथम शुक्लध्यानको धारण कर सकते है ॥१७८–१८२॥ यह ध्यान प्रशान्तमोह अर्थात् ग्यारहवे गुणस्थान, क्षीणमोह अर्थात् बारहवे गुणस्थान और उपशमक तथा क्षपक इन दोनो प्रकारकी श्रेणियोके शेष आठवे, नौवे तथा दसवे गुणस्थानमे भी हीनाधिक रूपसे होता है ऐसा बुद्धिमान् महर्षि लोग मानते है ॥१८३॥

दूसरा एकत्ववितर्क नामका शुक्लध्यान भी पहले शुक्लध्यानके समान ही जानना चाहिये किन्तु विशेषता इतनी है कि जिसका मोहनीय कर्म नष्ट हो गया हो, जो पूर्वोका जानने-वाला हो, जिसका आतमतेज अपरिमित हो और जो तीन योगोमेसे किसी एक योगका धारण करनेवाला हो ऐसे महामुनिका ही यह दूसरा शुक्लध्यान होता है ॥१८४॥ जिसकी कषाय नष्ट हो चुकी है और जो घातिया कर्मोको नष्ट कर रहा है ऐसा मुनि सवितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान सहित और अवीचार अर्थात् अर्थ व्यजन तथा योगोके सक्रमणसे रहित दूसरे एकत्ववितर्क नामके बलिष्ठ शुक्लध्यानका चिन्तवन करता है ॥१८५॥ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोके क्षयसे उत्पन्न होनेवाला तथा समस्त पदार्थोको जानने वाला अविनाशीक ज्योति स्वरूप केवल ज्ञानका उत्पन्न होना ही इस शुक्ल ध्यानका फल है ॥१८६॥ इस प्रकार ऊपर कहे अनुसार फलको देनेवाले पहलेके दोनो शुक्ल ध्यान ग्यारह अङ्ग तथा चौदह पूर्वके जाननेवाले और तीन तथा तीनमेसे किसी एक योगका अवलम्बन करनेवाले मुनियोके दोनो प्रकारकी श्रेणियोमे यथायोग्य रूपसे होते है। भावार्थ—पहला शुक्ल ध्यान उपशम अथवा क्षपक दोनो ही श्रेणियोमे होता है परन्तु दूसरा शुक्ल ध्यान क्षीण-मोह नामक वारहवे गुणस्थानमे ही होता है। पहला शुक्ल ध्यान तीनो योगोको धारण करने वालेके होता है परन्तु दूसरा शुक्लध्यान एक योगको धारण करनेवालेके ही होता है, भले ही

---

१ अवतरणम्। २ महासार्थवाहो वृहच्छ्रेष्ठी एषा महासार्थवाहास्तै। ३ नयद्रव्यार्थिकपर्यार्यिक। उपनय नैगमादि। सम्पात सम्प्राप्ति। ४ वडवाग्निनिवासकुण्डै। ५ प्रथमम्। ६ अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायेषु। ७ मनोवाक्कायेष्वेकतमयोगत। ८ पूर्वश्रुतवेदिन। ९ उपमारहिततेजस। १० –मेकत्वध्यान– अ०, प०, स०, इ०, ल०, म०। ११ निपातयन्। १२ त्रियोगानामेकयोगानाम्। पुसामित्यर्थ। १३ पूर्वोक्तफलस्य योगो ययोस्ते।

स्वामी परमशुक्लस्य द्विधा भेदमुपेयुषः ॥१८८॥
[1]स्नातक: कर्मवैकल्यात् कैवल्य पदमापिवान् । स्वामी परमशुक्लस्य द्विधा भेदमुपेयुषः ॥१८८॥
स हि योगनिरोधार्थम् उद्यत केवली जिनः । समुद्घातविधिं पूर्वम् आविः कुर्यान्निसर्गत: ॥१८९॥
दण्डमुच्चै: कवाटञ्च प्रतर लोकपूरणम् । चतुर्भि समयैः कुर्वँल्लोकमापूर्य तिष्ठति ॥१९०॥
तदा सर्वगतः सार्व सर्ववित् पूरको भवेत् । [2]तदन्ते रे[3]चकावस्याम् अधितिष्ठन्महीयते ॥१९१॥
जगदापूर्य विश्वज्ञ समयात् प्रतर श्रित. । तत. कवा[4]टदण्डञ्च क्रमेणैवोपसहरन् ॥१९२॥
तत्राघातिस्थितेर्भागान् असङ्ख्येयान्निहन्त्यसौ । अनुभागस्य चानन्तान् भागानशुभकर्मणाम् ॥१९३॥
पुनरन्तर्मुहूर्त्तेन निरुन्धन् योगमास्रवम् । कृत्वा वाङ्म[5]नसे सूक्ष्मे [6]काययोगव्यपाश्रयात् ॥१९४॥
सूक्ष्मीकृत्य पुन: काययोगञ्च तदु[7]पाश्रयम् । ध्यायेत् सूक्ष्मक्रिय ध्यानं [8]प्रतिपातपराङ्मुखम् ॥१९५॥
ततो निरुद्धयोगः [9]सन्नयोगी विगतास्रव. । समुच्छिन्नक्रियं ध्यानम् अनिवर्ति[10] तदा भजेत् ॥१९६॥
अन्तर्मुहूर्तमातन्वन् तद्ध्यानमतिनिर्मलम् । विधु[11]ताशेषकर्मांशो जिनो नि[12]र्वात्यनन्तरम् ॥१९७॥

वह एक योग तीन योगोमेसे कोई भी हो ॥१८७॥ घातिया कर्मोके नष्ट होनेसे जो उत्कृष्ट केवलज्ञानको प्राप्त हुआ है ऐसा स्नातक मुनि ही दोनो प्रकारके परम शुक्ल ध्यानोका स्वामी होता है । भावार्थ–परम शुक्लध्यान केवली भगवान्‌के ही होता है ॥१८८॥ वे केवलज्ञानी जिनेन्द्रदेव जव योगोका निरोध करनेके लिये तत्पर होते है तव वे उसके पहले स्वभाव से ही समुद्घात की विधि प्रकट करते है ॥१८९॥ पहले समयमे उनके आत्माके प्रदेश चौदह राजू ऊँचे दण्डके आकार होते है, दूसरे समयमे किवाडके आकार होते है, तीसरे समयमे प्रतर रूप होते है और चौथे समयमें समस्त लोकमे भर जाते है इस प्रकार वे चार समयमे समस्त लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित होते है ॥१९०॥ उस समय समस्त लोकमे व्याप्त हुए, सबका हित करनेवाले और सव पदार्थोको जाननेवाले वे केवली जिनेन्द्र पूरक कहलाते है उसके बाद वे रेचक अवस्थाको प्राप्त होते है अर्थात् आत्माके प्रदशोका सकोच करते है और यह सब करते हुए वे अतिशय पूज्य गिने जाते है ॥१९१॥ वे सर्वज्ञ भगवान् समस्त लोकको पूर्ण कर उसके एक एक समय वाद ही प्रतर अवस्थाको और फिर क्रमसे एक-एक समय बाद सकोच करते हुए कपाट तथा दण्ड अवस्थाको प्राप्त होकर स्वशरीरमें प्रविष्ट हो जाते है ॥१९२॥ उस समय वे केवली भगवान् अघातिया कर्मोकी स्थितिके असख्यात भागोको नष्ट कर देते है और इसी प्रकार अशुभ कर्मोके अनुभाग अर्थात् फल देनकी शक्तिके भी अनन्त भाग नष्ट कर देते है ॥१९३॥ तदनन्तर अन्तर्मुहूर्तमे योगरूपी आस्रवका निरोध करते हुए काय योग के आश्रयसे वचनयोग और मनोयोगको सूक्ष्म करते है और फिर काययोगको भी सूक्ष्मकर उसके आश्रयसे होनेवाले सूक्ष्म क्रियापाति नामक तीसरे शुक्लध्यानका चिन्तवन करते हैं ॥१९४–१९५॥ तदनन्तर जिनके समस्त योगोका विलकुल ही निरोध हो गया है ऐसे वे योगिराज सब प्रकारके आस्रवोसे रहित होकर समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति नामके चौथे शुक्लध्यानको प्राप्त होते है ॥१९६॥ जिनेन्द्र भगवान् उस अतिशय निर्मल चाथे शुक्लध्यानको अन्तर्मुहूर्त तक धारण करते है और फिर समस्त कर्मोके अशोको नष्ट कर निर्वाण अवस्थाको प्राप्त

---

१ सम्पूर्णज्ञानी । २ लोकपूरणानन्तरे । ३ उपसहारावस्थाम् । ४ कवाटं दण्डञ्च प०, द०, अ० स०, इ०, म० । कपाटदण्डञ्च ल० । ५ वाक् च मनश्च वाङ्मनसे ते । (चिन्त्योऽय प्रयोग) वाङ्मनसी ल०, म० । ६ बादरकाययोगाश्रयात् । तमाश्रित्य इत्यर्थं । ७ वाङ्मनससूक्ष्मीकरणे आश्रयभूत बादरकाययोगमित्यर्थं । ८ स्वस्थानपर्य्यन्तविनाशरहितम् । ९ –योग. योगी स विगतास्रव· अ०, प० । १० नाशरहितम् । ११ विधुता ल०, म० । १२ मुक्तो भवति ।